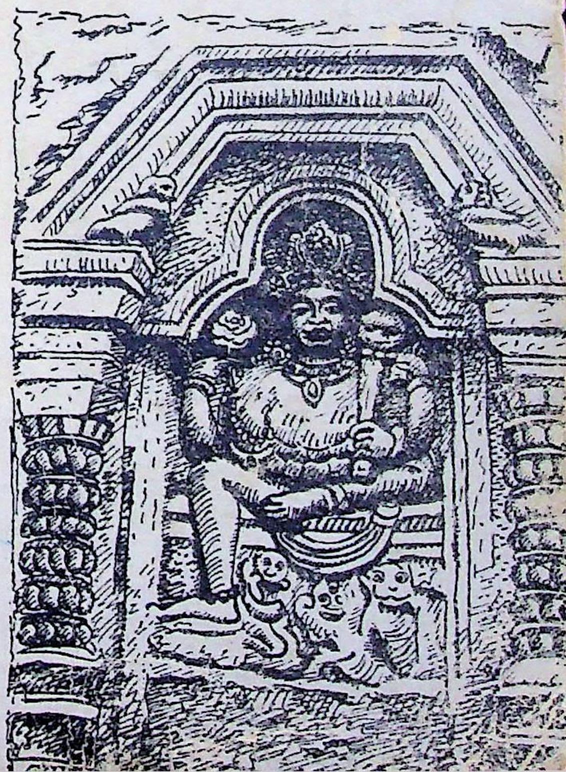


कल्हण

सोमनाथ धर



भारतीय साहित्य के निर्माता





कल्हण

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोधन के दरबार का वह दृश्य है, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। उनके नीचे बैठा है मुंशी जो व्याख्या का दस्तावेज लिख रहा है। भारत में लेखन-कला का संभवतः यह सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख है।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई.

सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

कल्हण

लेखक

सोमनाथ धर

अनुवादक

महेन्द्रकुमार वर्मा



साहित्य अकादेमी

Kalhana: Hindi translation by Mahendrakumar Verma of Somnath Dhar's English monograph. Sahitya Akademi, New Delhi (1993) Rs. 15

प्रथम संस्करण : १९७८
द्वितीय संस्करण : १९८२
तृतीय संस्करण : १९९३

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय
रवीन्द्र भवन, ३५, फिरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली–११०००१
बिक्री केन्द्र
'स्वाति', मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–११०००१
क्षेत्रीय कार्यालय
जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंजिल, २३ ए/४४ एक्स, डायमंड हार्बर रोड कलकत्ता–७०००५३
३०४–३०५, अन्ना सलाई, तेनामपेट, मद्रास–६०००१८

१७२, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई–४०००१४

मूल्य :
पन्द्रह रूपये

मुद्रक
सुनील प्रिंटर्स
CB-386 नारायणा, रिंग रोड
नई दिल्ली – ११००२८

विषय-सूची

प्रस्तावना

ठीक-ठीक पुरालेखों के अभाव में भारत का सुदूर अतीत धूमिल है। प्राचीन भारत में इतिहास ने (वास्तविक या पौराणिक) राजाओं की उपलब्धियों के पुरालेखों का रूप ले लिया था। उदाहरणार्थ, पुराणों में वंशावलियों के विवरण मिलते हैं और इनमें आर्यों के पहले के राजाओं की उपलब्धियों का विस्तार से वर्णन किया गया है। किंतु वैज्ञानिक इतिहास लिखने के लिए इन राजाओं से संबंधित बहुत कम तथ्य मिलते हैं। संस्कृत साहित्य की लंबी अवधि में गंभीर रूप से समीक्षक-इतिहासकार माने जाने वाले लेखक नगण्य हैं।

ईसा की छठवीं सदी के बाद ही हमें भारत के यशस्वी राजाओं के पुरालेख मिलते हैं—जैसे, बाण-कृत हर्षचरित, कल्हण-कृत राजतरंगिणी, आईने अकबरी, अकबरनामा इत्यादि। इन ग्रंथों में समाविष्ट तथ्यों को समकालीन साहित्यिक कृतियों में सन्निहित ऐतिहासिक सामग्री के संदर्भों द्वारा और शिलालेखों व मुद्राओं के प्रमाणों द्वारा जाँचा जा सकता है। हजारों साल पहले तक फैले हुए इतिहास का विस्तृत अभिलेख रखने के कारण कश्मीर को भारत में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है और इसके लिए कल्हण धन्यवाद के पात्र हैं।

कल्हण-कृत राजतरंगिणी (राजाओं की नदी) प्राचीनतम उपलब्ध कश्मीरी इतिहास की पुस्तक है। ११४८ और ११५० ईस्वी के बीच में लिखे गए इस अद्वितीय ऐतिहासिक काव्य में कश्मीर और शेष भारत से संबंधित मूल्यवान् राजनीतिक, सामाजिक तथा अन्य सूचनाएँ समाहित हैं। एच० जी० रॉलिंसन के शब्दों में 'यह इतिहास को हिन्दू भारत की एकाकी देन है'। संस्कृत-साहित्य की उपलब्ध-कृतियों में कल्हण का पुरालेख अपने तुलनात्मक ठीक-ठीक कालक्रम के लिए अलग ही विद्यमान है। साहित्यिक और दार्शनिक कृतियाँ लिखनेवाले अनेक भारतीय विद्वानों की तिथियाँ निश्चित करने की कुंजी भी इसके द्वारा प्रदत्त है। सचमुच राजतरंगिणी की प्राचीन भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण के क्षेत्र में बहुत बड़ी देन रही है।

उत्तरवर्ती संस्कृत पुरालेखों के स्वल्प ऐतिहासिक अभिलेखों का अब अधिक अच्छा स्पष्टीकरण संभव है और इसके लिए कल्हण की राजतरंगिणी की ठीक-ठीक सूचना को ही धन्यवाद देना चाहिए। इस प्रकार महान् कवि-इतिहासकार कल्हण ने न केवल कश्मीर की प्राचीन संस्कृति और इतिहास को विस्मृत होने से बचाया, अपितु उत्तरवर्ती के पुरालेखों के विश्रृंखललेखन को संयोजित करने में इतिहास के विद्यार्थी की सहायता भी की। और इससे भी बढ़कर यह बात है कि कश्मीर के इतिहास का विद्यार्थी अतीत के साथ अधिक सन्तोषजनक रूप से बौद्धिक वार्तालाप कर सकता है, जो कि भारत के अन्य प्रदेशों के इतिहास के विद्यार्थी के लिए मुश्किल से ही संभव है।

राजतरंगिणी के रणजित् सीताराम पंडित-कृत अनुवाद''[1] की अपनी लंबी प्रस्तावना के दौरान जवाहरलाल नेहरू ने इसकी कथा और नीति का सारांश दिया है कि किस प्रकार कल्हण ने अपने समकालीन, साथ ही साथ भूतकालीन, सामाजिक व राजनीतिक जीवन का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत किया है। नीचे एक उद्धरण है—

> "यह इतिहास है और यह एक काव्य है, यद्यपि इन दोनों बातों में कदाचित् तालमेल नहीं बैठता, और अनुवाद में विशेष रूप से इस संयोग के कारण हम दुखी हो जाते हैं; क्योंकि काव्य के संगीत को, कल्हण की उदात्त मधुर भाषा के मोहक सौंदर्य को हम सराह नहीं सकते...यह मध्ययुग को एक कहानी है और कई बार तो यह कहानी आनंददायक नहीं है। राजमहलों के भीतर चलनेवाले षड्यंत्र, हत्या, विश्वासघात, गृहयुद्ध और विद्रोहों की अधिकता है। यह तानाशाही और सैनिक शासन की कहानी है...यह राजाओं, राज-परिवारों और अभिजातवर्ग की कहानी है—न कि सामान्यजन की। फिर भी कल्हण की पुस्तक राजा के कार्यों के लेखे-जोखे से भी अधिक काफी कुछ है। राजनीतिक, सामाजिक, और कुछ सीमा तक, आर्थिक सूचना का यह एक भरापूरा भंडारघर है। हम देखते हैं मध्ययुग के सर्वांग कवच, चमकीले कवच धारण करनेवाले सामंती वीर...और षड्यंत्र, और युद्ध, कलहरत व व्यभिचारिणी रानियाँ। स्त्रियाँ एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हुई प्रतीत होती हैं, न केवल पर्दे के पीछे; अपितु नेता और सैनिक के रूप में सभाओं और समरांगण में भी। कभी-कभी हमें घनिष्ठ मानवीय संबंधों और भावनाओं की, प्रेम और घृणा की, श्रद्धा और वासना की झलक दिखाई दे जाती है। हम पढ़ते हैं सुय्य के महान् यांत्रिक क्रियाकलापों और सिंचाई-कार्यों के विषय में; सुदूर देशों में ललितादित्य के विजय-संग्रामों

१. दि इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद, १९३५, पुनर्मुद्रित, साहित्य अकादेमी, १९६८ व १९७७।

के बारे में; विजय करके अहिंसा फैलाने के लिए मेघवाहन के विचित्र प्रयास के संबंध में; मंदिर और विहारों के निर्माण तथा मंदिर के खजानों को लूटने-वाले अविश्वासुओं और मूर्तिभंजकों के द्वारा उनके विनाश के बारे में। और थे अकाल और बाढ़ और बड़े अग्निकांड जिन्होंने जनसंख्या के दशमांश को नष्ट कर दिया और बचे हुए लोगों को विपत्तिग्रस्त कर दिया।

यह वह समय था जब प्राचीन आर्थिक प्रणाली नष्ट हो रही थी, जिस प्रकार कश्मीर में उसी प्रकार शेष भारत में भी प्राचीन परिपाटी बदल रही थी। कश्मीर एशिया की विभिन्न संस्कृतियों—पश्चिमी ग्रीक-रोमन और ईरानी तथा पूर्वी मंगोलियाई—की मिलनस्थली थी; किंतु अपरिहार्य रूप से वह भारत का एक भाग थी और भारतीय आर्य-परंपराओं की उत्तराधिकारिणी। और जैसे ही आर्थिक संरचना ध्वस्त हुई, उसने प्राचीन भारतीय आर्य-राज्यव्यवस्था को हिला दिया, कमजोर कर दिया और उसे आंतरिक विप्लव और विदेशी विजय का सुलभ शिकार बना दिया। प्राचीन भारतीय आर्य-आदर्शों की चिंगारियाँ उठती हैं किंतु बदलती हुई परिस्थितियों में ये व्यर्थ हो जाते हैं, युद्धनायक चहलक़दमी करते हैं और जन-जीवन को तहस-नहस कर डालते हैं। जनक्रांतियाँ होती हैं—कल्हण कश्मीर का वर्णन एक ऐसे देश के रूप में करते हैं 'जो विद्रोहप्रिय है' और सेनानायक तथा साहसी लोग अपने लाभ के लिए उसका शोषण करते हैं।..."

राजतरंगिणी की विषयवस्तु ने, रणजित् सीताराम पंडित द्वारा अपने अनुवाद में दिए गए आकार-प्रकार तक पहुँचने के पहले, पांडुलिपि-परंपरा में काफ़ी प्रवास किया जो कि उल्लेखनीय है। कल्हण इस बात के लिए धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने राजतरंगिणी के आदि और अंत में ठीक-ठीक तिथियाँ दी हैं और इस कारण उनके द्वारा ग्रंथ की समाप्ति के बाद पांडुलिपि में फेर-बदल नहीं किया जा सका होगा। फिर भी कुछ भ्रष्ट पाठ और छंद-दोषों के द्वारा यह पाया जाता है (विशेषत: अंतिम भाग में) कि कल्हण ने पूरी कृति का संशोधन नहीं किया था। अंतिम ६००पद्य, जिनमें कुछ प्राय: निरर्थक अंश और अंतराल हैं, इस दोष को सर्वाधिक प्रकट करते हैं।

खैर, जो कुछ भी दोष हों, कश्मीर के इतिहास के प्राचीनतम और पूर्णतम अभिलेख में उत्तरवर्ती इतिहासकारों की अभिरुचि होने ही वाली थी। कश्मीर के सुल्तान ज़ैनुल अबीदीन (१४२१-१४७२ ई०) की प्रेरणा से राजतरंगिणी के एक भाग का पहला अनुवाद फारसी में किया गया था। इस संस्करण का शीर्षक था बहरुल् अस्मर (कथा-समुद्र)। जब अकबर ने कश्मीर पर कब्ज़ा किया, तब

उसने १५९४ ई० में अब्दुल कादिर अल्-बदायूँनी को यह अनुवाद पूरा करने का हुक्म दिया। अबुल फजल ने अपनी आईने-अकबरी में कश्मीर के प्राचीन इतिहास का सार दिया और स्रोत के रूप में कल्हण का उल्लेख किया। जहाँगीर के शासनकाल में मलिक हैदर ने १६१७ ई० में राजतरंगिणी का संक्षिप्त संस्करण तैयार किया। डॉ० फ्रांसिस बर्नियर (१६६५ ई०) ने अपने ग्रंथ 'पैराडाइस ऑफ़ दि इंडीज' में राजतरंगिणी के हैदर मालिक कृत अनुवाद का उल्लेख किया है। इसी प्रकार एक शताब्दी बाद फादर टीफैनथैलर ने इस संक्षिप्त संस्करण का उपयोग किया था।

यूरोप में संस्कृत-अध्ययन के प्रवर्तक सर विलियम जोन्स ने १९वीं सदी के प्रारंभ में 'एशियाटिक रिसर्चेज में घोषणा की थी कि वे 'संस्कृत कश्मीरी अधिकृत स्रोतों से भारत का इतिहास' लिखने का विचार कर रहे हैं; किंतु सामग्री प्राप्त करने तक वे जीवित नहीं रह पाए। १८०५ ई० में कोलब्रुक ने राजतरंगिणी की एक अधूरी प्रति प्राप्त की; किंतु पांडुलिपि का उनका विवरण १८२५ ई० में ही लोगों को मालूम हो सका।

इससे अच्छी पाठ्य सामग्री मूरक्रॉफ्ट को मिली थी जो महाराजा रणजीतसिंह की अनुमति से १८२३ ई० में श्रीनगर आए थे और प्राचीन शारदा पांडुलिपि से एक देवनागरी पांडुलिपि तैयार करवाई थी। यह राजतरंगिणी के उस संस्करण का आधार बनी जिसे १८३५ ई० में एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल के तत्त्वावधान में कलकत्ता में प्रकाशित किया गया था। स्टीन ने इस पांडुलिपि को 'सम्पूर्ण कश्मीरी पांडुलिपियों की आदर्श संहिता' बतलाया था, किंतु इसमें लिप्यंतर के दोष विद्यमान थे। कश्मीर की भूमिरचना और परंपरा से अपरिचित कलकत्ता के विद्वानों ने पाठ के साथ अनावश्यक मुक्त व्यवहार किया था।

इसी बीच में डॉ० होरेस हेमैन विल्सन ने, लगभग दस वर्ष पूर्व, एक राह दिखलाई जब उन्होंने 'ऐसे ऑन् दि हिंदू हिस्ट्री ऑफ़ कश्मीर'[1] प्रकाशित किया जिसमें राजतरंगिणी के पहले छह सर्गों का सारांश समाविष्ट था और जिसने सर्वप्रथम यूरोपीय इतिहासकारों को इस महत्त्वपूर्ण कृति से परिचित करवाया। इस संस्कृत विद्वान् ने ठीक-ठीक अनुवाद से बचते हुए, चतुरतापूर्वक तीन अधूरी देवनागरी पांडुलिपियों को अपना आधार बनाया था।

राजतरंगिणी के सर्वप्रथम पूर्ण अनुवाद के लिए मूल संस्कृत पाठ को आधार बनया गया था और उसे पेरिस में 'सोसायटी एशियाटिक' की कीर्तिध्वजा के अंतर्गत १८५२ ई० फ्रांसीसी भाषा में प्रकाशित किया गया। फिर भी फ्रांसीसी अनुवादक ए० ट्रॉयर (तत्कालीन कलकत्ता संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य) ने

---

१. एशियाटिक रिसर्चेज, कलकत्ता, १८२५ खंड १५।

उसी सामग्री को आधार बनाया था जिसका १८३५ ई० में कलकत्ता में उपयोग किया गया था।

१८३५ के कलकत्ता संस्करण का उपयोग योगेशचंद्र दत्त ने भी राजतरंगिणी के अपने इंगलिश अनुवाद के लिए किया था जिसका शीर्षक था 'कश्मीर के राजा : कल्हण पंडित के संस्कृत ग्रंथ राजतरंगिणी का अनुवाद' जो कलकत्ता में १८७९-१८८७ ई० के बीच में प्रकाशित हुआ था। कुछ प्रकार से ट्रॉयर के संस्करण से अच्छा होने पर भी दत्त का अनुवाद कलकत्ता संस्करण के दोषों से युक्त था, साथ ही प्राचीन कश्मीर की भूमिरचना, परंपरा और संस्थाओं के संदर्भों को ठीक-ठीक समझने में अनुवादक की असमर्थता भी थी।

राजतरंगिणी में विद्वानों की रुचि निरंतर बढ़ती ही गई। डोगरा शासन प्रारंभ होने के बाद कश्मीर की यात्रा करते हुए ए० कनिंघम ने राजतरंगिणी की कालक्रमप्रणाली से, साथ ही मुद्राओं के साक्ष्य से संबंधित कई बातों को स्पष्ट किया। कल्हण के कालक्रम विवरण में प्रयुक्त संवत् पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने राजतरंगिणी के प्राय: सभी राजाओं की तिथियाँ काफ़ी ठीक-ठीक निश्चित कीं। उसी समय कनिंघम ने कल्हण द्वारा बतलाई गई महत्त्वपूर्ण घटनाओं के समीक्षात्मक निर्धारण के लिए मुद्राओं के साक्ष्य भी निर्दिष्ट किये[1]। हिंदू युग के विद्यमान वास्तुकला के अवशेषों के अध्ययन ने भी इस विद्वान् सैनिक को ऐसे अनेक स्थानों को बतलाने में सहायता की जो कश्मीर का प्राचीन नक्शा निश्चित करने के लिए महत्त्वपूर्ण थे।

कल्हण की राजतरंगिणी ने फिर से अपनी ओर पश्चिम का ध्यान खींचा, इस बार प्रोफ़ेसर लासन के विख्यात जर्मन विश्वकोष, इंडिश आल्टरटुम्स्कुंड, के द्वारा जिसमें इस ग्रंथ की ऐतिहासिक विषयवस्तु का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया। प्रोफ़ेसर की विद्वत्ता के बावजूद विश्वकोष के विश्लेषण ने डॉक्टर विल्सन और जनरल कनिंघम द्वारा संग्रहीत ऐतिहासिक सामग्री में और अधिक कुछ नहीं जोड़ा।

यह काम प्रोफ़ेसर जी० बूहलर (तत्कालीन बंबई के शिक्षा विभाग से संबद्ध) के लिए छूटा रहा जिन्होंने १८७५ ई० में अपनी कश्मीर की यात्रा के परिणामस्वरूप यह बतलाया कि किस प्रकार कश्मीर के प्राचीन भूगोल की सही तरीके से पुर्नर्निमिति की जा सकती है जो, जैसा कि उन्होंने अपने सुविदित प्रतिवेदन में जोर दिया था, कल्हण की राजतरंगिणी को पूरी तरह से समझने में जरूरी थी। विद्वान् पुराविद् की कश्मीर-यात्रा संस्कृत भाषाशास्त्र के लिए एक स्मरणीय घटना बन गई। जहाँ तक राजतरंगिणी का प्रश्न है, प्रोफ़ेसर बूहलर ने स्पष्टीकरण

1. यह साक्ष्य, पाश्चात्वर्ती खोजों के साथ, वर्तमान सदी तक अनुवादकों और इतिहासकारों के श्रम को आलोकित करता रहा है।

के लिए उपलब्ध सामग्री की ओर इंगित किया—जैसे नीलमत पुराण, उत्तरवर्ती संस्कृत के पुरालेख और दूसरे कश्मीरी पाठ्यग्रंथ। उन्होंने देवनागरी पांडुलिपियों के ऊपर कश्मीरी पांडुलिपियों की श्रेष्ठता स्थापित कर दी। और इस प्रकार राजतरंगिणी के सही पाठ के समीक्षात्मक पुनर्निर्माण के लिए रास्ता बना दिया। उनके प्रसिद्ध प्रतिवेदन ने भावी इतिहासकारों के लिए कुछ समीक्षा-सिद्धांत स्थापित किए कि किस प्रकार कश्मीर और शेष भारत के इतिहास हेतु कल्हण की राजतरंगिणी का उपयोग किया जा सकता है। प्रोफेसर बूहलर से प्रेरित होकर डॉ० ई० हुल्ट्ज़ेक द्वारा लिखित राजतरंगिणी-विषयक उपयोगी समीक्षात्मक लेख १८८५ ई० में इंडियन एंटीक्वेरी (खंड १८, १९) में प्रकाशित हुए। १९वीं सदी के अंतिम दशक तक यूरोपीय और भारतीय संस्कृत विद्वानों द्वारा लिखित इस प्रकार के कई लेख प्रकाश में आए जिनमें से हर एक में राजतरंगिणी के विशिष्ट भाग या अंशों पर चर्चा थी। इसी समय एक दूसरे प्रमुख विद्वान् एम० ए० स्टीन ने कश्मीर की पुरातन अध्ययन-संबंधी कई यात्राएँ कीं और उन्हें एक संहिता मिली जो एक कश्मीरी विद्वान् पंडित राजानक रत्नकांत द्वारा संभवतः १७वीं सदी के तीसरे भाग में लिखी गई थी और जिसमें प्राचीन जनों द्वारा महत्त्वपूर्ण सुधार और टिप्पणियाँ अंकित थीं। श्रीनगर के पंडित गोविंद कौल की सहायता से स्टीन ने न केवल प्राचीन संस्कृत पाठ्य ग्रंथों का अपितु शेष भारत से इस घाटी को अलग करने वाली पर्वतमालाओं के पीछे विकसित हुई कश्मीर की विशिष्ट परंपराओं का भी अध्ययन किया जिससे कि कल्हण के विवरण को ठीक-ठीक समझा जा सके। उनका संस्कृतपाठ कश्मीर दरबार के संरक्षण में एजुकेशन सोसायटी प्रेस, बंबई, के द्वारा १८९२ ई० में प्रकाशित किया गया।

करीब उसी समय कश्मीर के पंडित दुर्गादास ने भी अपना संस्करण प्रस्तुत किया जो निर्णय सागर प्रेस, बंबई, द्वारा प्रकाशित किया गया। १९०० ई० में स्टीन ने राजतरंगिणी का इंगलिश-गद्य में अनुवाद किया। उन्होंने प्रोफ़ेसर बूहलर के अनुवाद के नमूने का अनुसरण किया, अनुवाद के एक ऐसे प्रकार को स्वीकार करते हुए जो कि टीकाकार को न केवल पाठ के अर्थ को सरलता से अनूदित करने की अपितु बहुधा अपने संस्करण में निहित रचना या दूसरे टीकासंबंधी कारणों को अप्रत्यक्ष रूप से इंगित करने की भी अनुमति प्रदान करता है। इस स्मरणीय सटीक संस्करण (दो खंड) ने पहली बार राजतरंगिणी की विषयवस्तु को प्रचुरता से स्पष्ट किया।

राजतरंगिणी का अगला महत्त्वपूर्ण अनुवाद, जैसाकि बतलाया जा चुका है, रणजित् सीताराम पंडित द्वारा किया गया था जिन्होंने, दुर्गादास के समीक्षात्मक संस्करण का अक्सर उल्लेख करते हुए, सामान्यतः स्टीन के संस्कृतपाठ का अनुसरण किया। तथापि उन्होंने यह महसूस किया कि स्टीन की 'अनुवाद-पद्धति मूल

अध्ययन करने में असमर्थ पाठकों को इस कृति के साहित्यिक रूप का पर्याप्त बोध नहीं कराती।' स्वयं के अनुवाद के बारे में उन्होंने कहा, "मूल पाठ के अंतरालों को छोड़कर यह पूर्ण और अशोधित है।"

रणजित् सीताराम पंडित के अनुवाद की जवाहरलाल नेहरू लिखित प्रस्तावना में से हम उद्धरण दे ही चुके हैं। यह जून १९३४ में देहरादून-जेल में लिखी गई थी। जवाहरलाल नेहरू ने (उस समय से करीब आधी सदी पहले की गई) एस० पी० पंडित की टिप्पणी का उल्लेख किया कि राजतरंगिणी ही 'अभी तक भारत में खोजी गई एक ऐसी कृति है जो इतिहास माने जाने का दंभ कर सकती है' और यह भी जोड़ा 'इस प्रकार की पुस्तक प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृत के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए आवश्यक रूप से महत्व रखती है।' रणजित् सीताराम पंडित के अनुवाद के विषय में उनका कथन इस प्रकार है, "अनुवादक ने हूबहू उल्थे को चुना है, कभी-कभी भाषा के सौंदर्य की उपेक्षा करके भी; और मैं सोचता हूँ कि उन्होंने ठीक ही चुना है क्योंकि इस प्रकार के काम में यथार्थता ज़रूरी है। अनुवाद का मूल्य, टिप्पणियों और परिशिष्टों के साथ 'कश्मीर के इतिहास के वैदिक, बौद्ध और ब्राह्मण युगों की उल्लेखनीय देनों पर प्रकाश डालते हुए"[१] और स्टीन की विद्वत्ता से प्रतिस्पर्धा करते हुए, ज्यों का त्यों बना है और समय की कसौटी पर कस चुका है।

भारतीय साहित्य के निर्माता के रूप में कल्हण का स्थान उनकी उपलब्ध कृति राजतरंगिणी के द्वारा सुरक्षित है जो एक साथ उत्कृष्ट साहित्यिक रचना और ऐतिहासिक अभिलेख है। उनके जीवन और कार्यों के विषय में अधिक जानकारी नहीं है। आगामी पृष्ठों में उनके जीवन और समय से संबंधित तथ्यों को उपलब्ध स्रोतों से बटोरने तथा भारतीय साहित्य को उनकी देन का मूल्यांकन करने की कोशिश की गई है।

---

१. सूफी जी० एम० डी०; कशिर; प्रस्तावना।

कल्हण और उनका परिवार

यह बात कि कल्हण के विषय में बहुत कम जीवन-संबंधी तथ्य उपलब्ध हैं, तत्कालीन और पूर्ववर्ती कई लेखकों के विषय में भी सच है। यह अत्यंत खेदजनक है कि उस विद्वान्-कवि के जीवन का कोई भी लेखा-जोखा उपलब्ध नहीं है जिसके प्रति हम प्राचीन कश्मीर के इतिहास के ज्ञान के लिए ऋणी हैं। किन्तु धैर्यपूर्वक अनुसंधान करके कल्हण के विषय में कुछ तथ्य उनके काव्य में से बटोरे गए हैं। इस प्रकार प्राप्त की गई सूचना कहीं ज़्यादा है, उदाहरणार्थ, कालिदास की अपेक्षा जिनके विषय में परस्पर-विरोधी किंवदंतियाँ हैं!

कल्हण यह नाम राजतरंगिणी की आठों तरंगों के अंत में आता है। प्रत्येक स्थान पर इसकी रचना 'कल्हण, प्रसिद्ध स्वामी चंपक कश्मीरी मंत्री के पुत्र' के द्वारा की गई बतलाई गई है। उनके पिता चंपक कश्मीरी सामंत थे जो द्वारपति या अग्रिम मोर्चों के सेनापति पद पर अभागे राजा हर्ष के शासनकाल में नियुक्त थे। कल्हण ने अपने ग्रंथ की प्रस्तावना ११४८-४९ ई० में लिखी और अगले साल उसे पूरा किया। इन तिथियों पर विचार करने पर इस पुरालेख में राजा हर्ष के प्रमुख पदाधिकारी के रूप में चंपक के नाम की पुनरावृत्ति चंपक से कल्हण के अपत्य-संबंध को सिद्ध करती है। द्वारपति के रूप में उनका ससम्मान उल्लेख है; सीमान्त में दरिद लोगों के विद्रोह को दबाने में उनके द्वारा लिये गए भाग के कारण और विपत्तिग्रस्त होने तक राजा हर्ष के प्रति स्वामिभक्त रहनेवाले कुछ अधिकारियों में से एक होने के कारण भी उनकी प्रशंसा की गई है। यह बतलाया गया है कि विपत्ति के समय चंपक उपस्थित नहीं थे क्योंकि राजा ने उन्हें विशेष अभियान के लिए भेजा था। बाद में राजधानी छोड़कर भागने के लिए मजबूर होनेवाले अभागे राजा और चंपक के बीच का वार्तालाप तथा राजा की दुःखांत मृत्यु से संबंधित दूसरी घटनाएँ अपने विवरण की सचाई के कारण पिता-पुत्र-संबंध को स्पष्ट करती हैं। केवल, कल्हण राजा के प्रति प्रदर्शित चंपक के स्नेह को शायद पसंद नहीं करते थे। चंपक (८, २३६५) ११३६ ई० में शायद जीवित थे।

पुरालेख में एक दूसरे निकट संबंधी का उल्लेख है। वह है चंपक का छोटा भाई कनक। यह जानकर कि राजा अत्यंत संगीतप्रेमी है उसने राजा से संगीत का पाठ सीखकर राजा की कृपा प्राप्त कर ली। कनक को बहुत अच्छा पुरस्कार मिला, करीब एक लाख स्वर्ण-मुद्राएँ। इस पुरस्कार की उदारता अप्रत्यक्ष रूप से कल्हण के परिवार की उच्च स्थिति को प्रदर्शित करती है। यह निष्कर्ष पुरालेख के एक-दूसरे अनुमान के साथ भी जुड़ जाता है कि कल्हण ने कभी भी जीविका के लिए काम नहीं किया—और अपने जीवनकाल में कभी भी आयस्रोतों के अभाव या कमी को नहीं जाना।

राजतरंगिणी से विदित होता है कि कनक अपने राजकीय संरक्षक की स्मृति के प्रति ईमानदार बने रहे और राजा की मृत्यु के बाद वाराणसी चले गए, अपने अंतिम दिवस शांति और मनन में बिताने के लिए। जहाँ तक चंपक का प्रश्न है, जिस प्रकार एकाएक उनका परिचय कराया है (७,९५४) उससे न केवल उनका कल्हण का पिता होना स्पष्ट होता है बल्कि कल्हण की इस सरलता की ओर भी इंगित करता है कि समकालीनों से उनका परिचय कराना या एक प्रसिद्ध व्यक्ति के विषय में और अधिक जानकारी देना शायद ही ज़रूरी है। संबंधित पद्य इस प्रकार है, "नंदीक्षेत्र में हर साल सात दिन बिताकर चंपक ने अपने संपूर्ण जीवन में अर्जित धन को सफल बनाया"। राजतरंगिणी में किये गए तीर्थों के विशद विवरण से यह स्पष्ट है कि नंदीक्षेत्र के तीर्थों के उत्साही पुजारी अपने पिता के साथ कल्हण भी बाल्यावस्था में इन पवित्र स्थलों पर गए थे। इसीलिए इसमें संदेह नहीं कि कल्हण का परिवार जाति से ब्राह्मण था। चूंकि (ब्राह्मण कुलोत्पन्न) पंडितों के लिए संस्कृत का ज्ञान होना तद्विशिष्ट गुण था; राजतरंगिणी में प्रदर्शित उनकी गंभीर विद्वत्ता उनके वंश के विषय में प्रमाण है; यदि कोई आवश्यक हो तो। तीन शताब्दियों बाद जोनराज ने कल्हण को द्विज बतलाया।)

कल्हण के जन्मस्थान के विषय में रजतरंगिणी से अप्रत्यक्षतः अनुमान लगाया जाता है। वे अपने चाचा कनक के एक सत्कार्य का उल्लेख करते हैं जिन्होंने उनके जन्मस्थान परिहासपुर में बुद्ध की एक विशाल प्रतिमा को राजा हर्ष के एक विध्वंसक आदेश से ठीक समय पर बचाने के लिए अवरोध किया था। विवरण के झुकाव से ऐसा लगता है कि कनक किसी बौद्ध संप्रदाय में दीक्षित थे। इसके द्वारा बौद्धमत के प्रति कल्हण की स्वयं की सहिष्णु धारणा की कुंजी भी प्रदत्त है।

परिहासपुर कल्हण के परिवार का मूल गृहस्थान था, वह बात राजतरंगिणी में वर्णित उसके पवित्र स्थलों के और उस क्षेत्र की भू-रचना के विशद वर्णन से स्पष्ट है।

कल्हण का पारिवारिक उत्तराधिकार अत्यंत आभिजात्य था। अपने पिता के जीवन और चरित्र से अत्यधिक प्रभावित होकर कल्हण उनके जन्म और वंश के प्रति साभिमान थे। ब्राह्मण वर्ग में उत्पन्न होने पर और शैव मत में अनुरक्त होने पर भी उनका परिवार बौद्धमत के प्रति सहिष्णु था। ब्राह्मण होने के कारण कल्हण शैवमत के परलोकवादी सिद्धांतों और साथ-ही-साथ संबद्ध तांत्रिक संप्रदाय से परिचित थे। इस बात का अनुमान कश्मीर में शैवमत के प्रमुख व्याख्याता भट्ट कलट्ट के प्रति उसके सम्मानपूर्ण उल्लेखों से लगाया जाता है। राजतरंगिणी के प्रारंभ में है शिवस्तुति—"अलंकारभूत नागों की मणियों की सम्मिलित आभा से मनोरम"—अपने अर्धनारीश्वर रूप में "पत्नी से युक्त अर्धांग वाले"। इस स्तुति का महत्त्व इस बात में है कि इसके द्वारा कल्हण के समय में शैवमत का प्रचार प्रमाणित होता है।

ब्राह्मणों के शैवमत से उनके परिवार का घनिष्ठ लगाव होने पर भी कल्हण राजतरंगिणी में सर्वत्र बौद्धमत के प्रति सौजन्यतापूर्ण झुकाव प्रदर्शित करते हैं।[1] बौद्धमत का प्रचार करने हेतु विहार और स्तूप बनाने के लिए अशोक से लेकर कल्हण के समकालीन नरेशों तक की प्रशंसा की गई है। निजी व्यक्तियों द्वारा की गई स्थापनाओं का भी उसी प्रकार ध्यानपूर्वक विवरण दिया गया है। सभी प्राणियों के सुखदाता, पूर्ण उदारता और भावनाओं की उदात्तता के मूर्तिमान् स्वरूप बोधिसत्त्वों या स्वयं बुद्ध का भी बारंबार उल्लेख करने में कल्हण हिचकिचाते नहीं हैं। ये उनके लिए चरम उत्कृष्टता के सत्त्व हैं 'जो पापी पर भी क्रुद्ध नहीं होते, अपितु उस पर धैर्यपूर्वक दया करते हैं'।[2] बौद्ध परंपरा और पदावली के विशिष्ट मुद्दों से कल्हण का पूर्ण परिचय मालूम होता है। उस देश में इस बात की ही पूरी आशा थी जिसमें कश्मीरी ब्राह्मण-संप्रदाय का प्राचीन धार्मिक अधिकारिग्रंथ नीलमतपुराण बुद्ध के जन्मदिन को उत्सव के रूप में मनाने का विधान करता है जिस समय उनकी मूर्ति की पूजा की जाती थी और चैत्य सजाए जाते थे। कल्हण की सहिष्णुता और आगे भी बढ़ गई—वह मूर्तिभंजक अविश्वासुओं तक चली गई—क्योंकि एक इतिहासकार के रूप में वे स्वतंत्र और भावहीन दर्शक थे।

बौद्ध लोगों के समान, कर्म में कल्हण का विश्वास राजतरंगिणी में प्रमुख है। उसमें भाग्य या नियति केप्रति भी बारंबार उल्लेख है। महत्त्वाकांक्षा, वासना और अपराध की तात्त्विक शक्तियाँ मानवीय कर्मों को उत्प्रेरित करती प्रतीत होती हैं, पूर्णत्व में एक-दूसरे को काटती हुई। फिर भी प्रत्येक युग का आदर्श कल्हण के लिए

१. चीनी तीर्थयात्री ओकांग ने, जो ७५९ ई० में कश्मीर आया था, वहाँ तीन सौ बौद्ध मठ पाए थे।

२. स्टीन एम० ए०, कल्हण की राजतरंगिणी, अनुवाद, खंड १, आमुख।

आभासमान अराजकता से उद्भूत होता हुआ प्रतीत होता है। इसलिए प्रत्येक तरंग के पहले पद्य में जीवन के रूपक और रहस्य के संबंध में कल्हण कुछ मत व्यक्त करते हैं जो उस तरंग के वर्णन को ध्वनित करता है। उसी तरह, प्रकृति की दृश्यावली का वर्णन करते समय वे दार्शनिक साधारणीकरण कर देते हैं। वे अक्सर कल्प के अंत में होने वाले प्रलय का उल्लेख करते हैं।

कल्हण न केवल अपनी धार्मिक वृत्ति में सहिष्णु थे, अपितु वे अनन्य रूप से संकीर्ण सिद्धांतवाद और राष्ट्रीयता की बुराइयों से भी मुक्त थे। यह कल्हण की ही विशेषता थी कि उन्होंने कश्मीर घाटी में त्रिग्रामी में मारे गए बंगाली राजा की विश्वासघातपूर्ण हत्या का बदला लेने के लिए कश्मीर की कठिन यात्रा करने वाले बंगाली योद्धाओं की भी प्रशंसा की है। उन्होंने 'गौड (बंगाल) के बहादुर लोगों' की तारीफ़ की जिन्होंने अपने जीवन की बलि दे दी थी : "उनके खून के फुहारों से सामंत-राजा के प्रति उनकी असाधारण स्वामिभक्ति चमक उठी थी और पृथ्वी धन्य हो गई थी।"

कल्हण वीर-पूजक नहीं थे; राजतरंगिणी में कीर्तिधवलति वीरपुरुष या वीरांगनाएँ नहीं हैं। इसी प्रकार कल्हण पर जाति का भूत भी सवार नहीं था। वे पुरोहित-वर्ग के कटु आलोचक थे और उन लोगों के द्वारा राजकार्य में टाँग अड़ाए जाने के प्रति अपनी घृणा को उन्होंने छिपाया नहीं। वे लिखते हैं कि किस प्रकार जाति या जन्म के कारण ही कोई अधिकारी किसी नागरिक या सैनिक पद पर नियुक्त होने के लिए अयोग्य नहीं बन जाता। डोंब और ब्राह्मण दोनों सैनिक बनते थे, सेनानी के उच्च पद पर पहुँचते हुए। एक क्षत्रिय राजा के द्वारा रोहतक की एक बनिया स्त्री से विवाह करने का उल्लेख है। बौद्ध युग में तो अस्पृश्यता का ज़ोर भी खत्म हो गया था—यह उदार परंपरा आज भी कश्मीरघाटी में विद्यमान है। यद्यपि अपने परिवार और स्थिति के कारण कल्हण का अधिकारी-वर्ग से संपर्क था—उन्होंने कार्यस्थों की बुराइयों को प्रकट किया है जो जाति से ब्राह्मण थे।

कल्हण अपने विषय में चाहे जितने मौन हों, उनके विस्तृत ज्ञान को बतलाने वाले पर्याप्त प्रमाण राजतरंगिणी में दृष्टिगोचर हैं—पारंपरिक शास्त्रों की विद्यमान शाखाओं का उन्हें पूर्ण ज्ञान था। वे न केवल रघुवंश और मेघदूत जैसे प्रामाणिक ग्रंथों से सुपरिचित थे; अपितु उन्होंने रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों का भी अध्ययन किया था—इन दोनों का उपयोग उन्होंने स्वयंलिखित घटनाओं से समानता बतलाकर भी किया है। पांडवों और कौरवों के युद्ध तथा संबंधित पुराणकथाओं के चारों ओर घूमने वाले आख्यान कल्हण को, साथ ही उनके पूर्ववर्तियों और समकालीनों को, इतिहास ही प्रतीत होता था। जैसा कि स्टीन[1] ने

---

१. स्टीन एम० ए०; कल्हण की राजतरंगिणी का अनुवाद, प्रस्तावना।

लिखा है, "भारतीय मस्तिष्क के लिए ऐतिहासिक युग की घटनाओं से इन महाकाव्य-कथाओं का अंतर इतना ही है कि वीर-युग की चमक और संपूज्य अधिकारियों के द्वारा लिखे जाने के कारण इनमें अधिक रुचि प्रदर्शित की गई है। हम यह अनुमान बेधड़क लगा सकते हैं कि इन पवित्र महाकाव्यों के अध्ययन ने कल्हण को अपना काम चुनने में प्रत्यक्षतः प्रभावित किया।"

कल्हण की साहित्यिक शिक्षा-दीक्षा के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं जिसके द्वारा वे कवि इतिहासकार की भूमिका निभाने के लिए सुसज्ज बने और न केवल कश्मीरी अपितु संपूर्ण भारतीय साहित्य और इतिहास पर अपनी अमिट छाप छोड़ गए। अपने समकालीन और पूर्ववर्ती अनेक कवियों और विद्वानों के विषय में उन्होंने जो उल्लेख किए हैं वे उनकी ज्ञानमयी पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हैं और संस्कृत साहित्य के विद्यार्थियों के लिए ये बहुमूल्य सिद्ध हुए हैं। यह निश्चित है कि ११वीं सदी ईस्वी के प्रायः आठवें दशक में कश्मीरी कवि बिल्हण द्वारा रचित विक्रमांकदेवचरित कल्हण ने पढ़ा था। इस प्रसंग में, कल्हण के समकालीन कवि मंख द्वारा रचित श्रीकंठचरित में कवि कल्याण का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है। कल्याण के काव्य-कौशल के विषय में मंख कहते हैं कि उसमें दर्पण के समान प्रतिबिंबित है बिल्हण का सारा काव्य-कौशल। आख्यानों और कथाओं को पढ़ने के लिए कल्याण के उत्साह का भी मंख उल्लेख करते हैं। यह उल्लेख कल्हण के अलावा और किसी के लिए नहीं हो सकता; संस्कृत-शब्द कल्याण का ही प्राकृत-रूप कल्हण है। श्रीकंठचरित पर लिखी गई अपनी टीका में जोनराज कथाओं में कल्हण की गहन अभिरुचि का उल्लेख करते हैं; संकेत महाभारत और दूसरे महाकाव्यों की कथाओं की ओर ही है। प्राकृत कल्हण के आधार पर कल्हण और कल्याण में तादात्म्य स्थापित हो जाने से कल्हण की विद्वत्ता और उदार पृष्ठभूमि और अधिक सिद्ध हो जाती है।

इस प्रकार राजतरंगिणी में से प्रचुरतापूर्वक अनुमानित कल्हण के विशिष्ट गुण उनकी परिस्थितियों और वातावरण के संदर्भ में विशेष महत्त्व उपार्जित कर लेते हैं। समकालीन घटनाओं पर उनकी पकड़ और साथ ही साथ उनके व्यक्तिगत राजनीतिक मतों की हमें प्रशंसा करनी पड़ती है। जिस यथार्थता से उन्होंने सैन्य-संचालन का वर्णन किया है उससे यह प्रकट होता है कि वे युद्ध विद्या में निपुण थे। भूरचना से उनका घनिष्ठ परिचय यह स्पष्ट करता है कि स्वतंत्र साधन-संपन्न व्यक्ति होने के कारण उन्होंने काफ़ी यात्राएँ की थीं। और इन सबसे ऊपर है निर्णय की स्वतंत्रता जो कल्हण अपने समय की घटनाओं और व्यक्तियों के विषय में प्रकट करते हैं।

कल्हण और उनका समय

राजतरंगिणी के अधिकांश भाग में वे ही घटनाएँ सम्मिलित की गई हैं जो कल्हण के समय में घटी थीं। जो कुछ उन्होंने स्वयं देखा या सुना और जो कुछ जीवन्त स्मृति के जरिये उन्हें गोचर हुआ, वही उन्होंने इतने विशद रूप से लेखनी-बद्ध किया कि उनके समकालीन या पूर्ववर्ती किसी भी अन्य लेखक की अपेक्षा तत्कालीन कश्मीर की राजनीतिक और सामाजिक अवस्थाओं का स्पष्टतर चित्र उनके द्वारा खींचा गया है। कश्मीर घाटी की प्राचीन भूरचना विषयक उनके विस्तृत ज्ञान ने इतिहासकार और भूगोलज्ञ के लिए वास्तव में एक सोने की खदान प्रस्तुत कर दी है। तत्कालीन मनुष्यों (और तौर-तरीक़ों) के विषय में उनके विचार स्वयं कल्हण के चरित्र और व्यक्तिगत संबंधों की कुंजी प्रदान करते हैं।

इन घटनाओं के वर्णन का तरीका यह बतलाता है कि जिस समय उन्होंने लिखा उस समय उन्हें संसार का काफ़ी अनुभव हो चुका था। राजतरंगिणी की रचना ११४८-५० ईस्वी के बीच की गई थी, जैसा कि कल्हण ने स्वयं कहा है। उदाहरणार्थ, सुस्सल (१११२-२८ ई०) के राज्यकाल में घटी घटनाओं के वर्णन की शैली स्पष्टतः यह बतलाती है कि वे उस समय मनुष्यों और उनकी प्रवृत्तियों के परिपक्व दर्शक थे। इसीलिए उनकी जन्मतिथि को शब्तादी के प्रारम्भ में रखा गया है।

कल्हण के जीवन का अधिकांश भाग जिस काल में बीता वह कश्मीर के लिए गृहयुद्ध और राजनीतिक कलह का एक लंबा काल था। बारहवीं सदी का आरंभ होते ही कश्मीर में महत्त्वपूर्ण राजवंशीय उत्क्रांति हुई जिससे देश का राज-नीतिक जीवन प्रभावित हुआ। राजा हर्ष, जिनके राज्यकाल (१०८९-११०१ ई०) के प्रारंभ में समृद्धि और शांति स्थापित हुई, अपने स्वयं के अविचारी स्वभाव का शिकार हो गए। राजा के द्वारा सताए गए ज़मींदारों ने विद्रोह कर दिया। हर्ष मारे गए। सत्ता को हथियाने वाले उच्चल और सुस्सल नामक भाइयों ने देश को बाँट लिया।

बड़े भाई उच्चल के अधीन घाटी का शासन था; लोहार और समीपवर्ती पर्वतीय क्षेत्र सुस्सल के अधीन थे। अत्यंत शीघ्र दोनों विद्रोही राजकुमार कश्मीर के सिंहासन हेतु प्रतिस्पर्धी बन गए। उच्चल का शासनकाल सिंहासन पर झूठा अधिकार जतानेवालों और सतत राजनीतिक गड़बड़ियों से आतंकित रहा जिसका देश की आर्थिक स्थिति पर विपरीत प्रभाव पड़ा। उच्चल की हत्या के बाद कई मिथ्यावादियों ने शासन किया और अंत में डमार-प्रमुख गर्गचंद्र की सहायता से सुस्सल ने अपनी महत्त्वाकांक्षा पूरी कर ली। उसका शासन भी कुछ कम निरंकुश नहीं था और महल से शुरू होने वाले षड्यंत्रों से भरा हुआ था जिनकी प्रतिक्रिया अपरिहार्य थी। सुस्सल को कुछ महीनों के लिए लोहार भागकर जाना पड़ा; किंतु शक्तिशाली डमारों को एकता-रहित पाकर, उसने ११२१ ई० में पुन: सिंहासन पर अधिकार कर लिया। सुस्सल के शासनकाल के अगामी सात वर्षों में निरंतर गृहयुद्ध चलता रहा। ११२८ ई० में हर्ष के पौत्र भिक्षाचर को मारने के स्वयं के षड्यंत्र के फलस्वरूप सुस्सल मर गया। उसके बाद उसका पुत्र जयसिंह राजा बना और उसने 'फूट डालकर राज्य करो' की नीति अपनाकर डमारों के साथ कुछ-कुछ शांति बनाये रखी। आंतरिक शांति के संक्षिप्त अंतराल भी अक्सर सतत विध्वंस और विग्रह की शक्तियों से अभिभूत रहे।

कल्हण की राजतरंगिणी के अंतिम वर्ष (११४५ से ११४६ ई०) यह आभास देते हैं कि जयसिंह इस काल में अपेक्षाकृत शांति से रहा। उसने अपने बड़े पुत्र गुल्हण को लोहार का राजा बना दिया। भिक्षाचर पकड़ा गया और ११३० ई० में मार डाला गया। झूठा अधिकार जतानेवाले अनेकों लोग दूर हटा दिये गए। कल्हण बतलाते हैं कि किस प्रकार इस काल में राजा ने कई पवित्र कार्य किये तथा राजकुल के कई सदस्यों और मंत्रियों ने उसका अनुसरण किया।

घटनाओं की ऊपर लिखी झलक से यह स्पष्ट होता है कि कल्हण का जीवनकाल आंतरिक विग्रहों के बीच बीता; किंतु अशांत वातावरण से उनके लेखनकार्य में अनावश्यक विघ्न नहीं पड़ा। क्या राजनीतिक घटनाओं के सतत परिवर्तन ने कल्हण के जीवन और कार्य में कोई उल्लेखनीय विघ्न डाला, इस बात का अध्ययन रुचिकर हो सकता है। उत्तरोत्तर राजा बनने वालों की सेना में नियुक्त अधिकारियों के बीच, इतने सारे चापलूस-चुगलखोरों व षड्यंत्रकारियों के साथ, चम्पक का नाम नहीं आता। चम्पक, जैसा कि बतलाया जा चुका है, हर्ष के प्रशासन में एक अत्युच्च पद पर आसीन थे। राजतरंगिणी से यह स्पष्ट नहीं होता कि क्या, हर्ष की मृत्यु के उपरान्त, चम्पक ने पूर्ण स्वेच्छा से ही अवकाश ग्रहण कर लिया था?

राजतरंगिणी से यह पूरी तरह स्पष्ट है कि कल्हण ने किसी भी राजा के अधीन किसी भी पद पर कार्य नहीं किया। वे किसी भी राजा की छत्रच्छाया में

नहीं रहे, यद्यपि ऐसा लगता है कि राजदरबार में हमेशा उनकी पहुँच रही। राजतरंगिणी में यह बतलाने वाला कुछ भी नहीं है कि उन्होंने संरक्षक की प्रशंसा करने की अलिखित परंपरा का पालन किया था, क्योंकि उनका कोई संरक्षक ही नहीं था। इस बात का कोई भी संकेत या उल्लेख नहीं है कि उन्होंने अपनी रचना जयसिंह (जिसके शासनकाल में राजतरंगिणी पूर्ण हुई) या किसी अन्य पूर्ववर्ती राजा के आदेश से लेखनीबद्ध की। जिन सामान्य शब्दों में जयसिंह की उपलब्धियों की प्रशंसा की गई है, उनसे ऐसा लगता है कि मानो वे सामान्य कार्य ही पूरा कर रहे हैं, दक्षिणपक्षीय होकर। फिर भी वे जयसिंह के पिता सुस्सल के गंभीर दोषों की ओर इंगित करते हैं और बिना हिचकिचाए भिक्षाचर के शौर्य की प्रशंसा करते हैं जिसके आचरण के कारण जयसिंह और उनके पिता को कष्टकर समय देखना पड़ा। 'अपनी सेनाओं को कठिन परिस्थितियों से उबारने वाला, अश्रान्त, आत्मश्लाघा रहित, कठिनाइयों को झेलने वाला बहादुर व्यक्ति भिक्षाचर के समान कहीं भी नहीं मिल सकता' (८-१०१७)। उसी तरंग के १७७६वें श्लोक में आगे कहा गया है, 'लंबी अव्यवस्था के दौरान जिनके लिए वह पगहे के समान था और जिनकी बर्बादी का कारण था; अंत में वे भी उसकी प्रशंसा करते थे, उसकी वीरता पर आश्चर्य करते हुए।' उस समय के दूसरे मिथ्या अधिकार जतानेवालों में केवल भोज ही कल्हण की सहानुभूति का पात्र बना।

कश्मीरी लोगों को समझने-बूझने के अनेक अवसर मिलने से वे उनका, शब्दाडंबर के बिना, यथार्थ चित्रण करते हैं; क्योंकि वे केवल इतिहासकार नहीं थे, बल्कि कवि भी थे जो वनाच्छादित घाटियों, उसके उन्नत हिमाच्छादित पर्वतों, हरे-भरे चरोखरों और स्वच्छ निर्झरों व नदियों से प्रेम करते थे। वे अपने समय के मनुष्यों व तौरतरीक़ों को सप्राण कर देते हैं और उनके पुरालेख के जरिए अतीत हमारे लिए पुनः सजीव हो उठता है।

निकटदर्शी होने के कारण वे किसी बात पर ध्यान देने से नहीं चूकते थे और उनके ख़्याल से तत्कालीन कश्मीरियों में शारीरिक और नैतिक साहस की कमी थी, विशेषकर समाज की निम्न श्रेणियों में। कश्मीरी सैनिकों की कोरी आत्मश्लाघा को मजाक का विषय बनाया गया है—कि किस प्रकार, तुर्कों से डरकर, कुछ भाग खड़े हुए, कभी-कभी तो पूरा शिविर तितर-बितर हो गया, और (८.३२४) नायक 'कुत्ते के समान गायब हो गया, पूँछ के समान अपनी कटार छुपाए हुए'। यह स्पष्ट है कि कल्हण अपने देशवासियों की सैनिक वीरता के विषय में उच्च विचार नहीं रखते थे और अपने समय के युद्धरत राजन्यों में दृष्टिगोचर विश्वासघात के अनेक उदाहरणों से ऊब गए थे। दूसरी ओर, युद्धरत राजन्यों के पक्षधर राजपुत्रों और भाड़े के भारतीय सैनिकों के शौर्य की उन्होंने कई अवसरों पर प्रशंसा की है।

साथ ही, शासकों के बीच चलने वाले उत्तराधिकार-संबंधी युद्धों और दरबारी षड्यंत्रों के प्रति अपने देशवासियों की निरीह उदासीनता पर भी कल्हण का ध्यान गया। वे उन सामंत डमारों की आलोचना करते हैं जो हर्ष के पतन का कारण थे और कल्हण के जीवन-काल में कश्मीर घाटी में होने वाले राजनीतिक उलट-फेर के लिए ज़िम्मेदार थे। यद्यपि अवंतिवर्मा और दिद्दा जैसे शक्तिशाली शासकों ने उजड्ड डमारों को दबाने की कोशिश की और कुछ सफलता भी पाई; फिर भी सामंती समाज की आर्थिक संरचना से इन्हें सतत अवलंबन प्राप्त हुआ। उस समाज में ज़मींदारों का उत्थान अपरिहार्य था जिसमें खेत जोतने वाला उस जागीरदार का आसामी था जो अच्छे-बुरे तरीक़ों से राजस्व वसूल करता था और साल में एक बार राजकीय अधिकारियों को दे देता था। कल्हण इस बात का उल्लेख करते हैं कि किस प्रकार कुछ डमारों ने ज़मीन के राजस्व से काफ़ी धन-संपत्ति एकत्र कर ली थी। इन सामंती प्रजापीड़कों के उजड्डपन और गँवारूपन की, साथ ही छोटे अधिकारियों के द्वारा सताए जाने की भी, कल्हण ने पोल खोली है। वे पुरोहितों की राजनीतिक सूझ को भी आँकते हैं जो निर्बल शासकों को अभीष्ट मार्ग पर चलने को फुसलाने के लिए प्रायोपवेश का सहारा लेते थे। दूसरे अवसरों पर, वे उनके स्वार्थीपन का मजाक भी उड़ाते हैं जो आश्चर्यजनक रूप से कायरता से सम्मिश्र था।

ललितादित्य (और उसके समान शक्तिशाली शासकों) के अधीन लोग गुलामों के समान रहते थे। पूर्वोल्लिखित डमार प्रमुख जागीरदार जीवन की सर्वोत्तम वस्तुओं का उपभोग करते थे। दरबारी और उच्च-वर्गीय लोग प्रसिद्ध कश्मीरी भोजन का मजा लेते थे, उनके लिए उपलब्ध था 'तला हुआ माँस' और 'बर्फ़ से ठंडी व फूलों से सुगंधित मजेदार हल्की शराब' शराब का उपयोग प्राचीन-काल से ही होता था। नीलमतपुराण में उत्सवों में शराब के उपयोग का वर्णन है। जहाँ तक सामान्य लोगों का प्रश्न है, वे चावल और हख़ से अपना पेट भरते थे जो कि अकाल के समय तो उन्हें मिलते भी नहीं थे—और अकाल भी तो कुछ कम नहीं पड़ते थे। राजतरंगिणी से ग़रीब और पीड़ितों के लिए कल्हण की भावनाएँ स्पष्ट हैं। तरंग ४.३९२-३९४ में वे क्रूर, मनमौजी राजा वरादित्य के विषय में बतलाते हैं जिसने 'म्लेच्छों को आदमी बेचे थे'[1] और दासों के व्यापार को 'म्लेच्छों के योग्य' कहते हैं।

दसवीं सदी ई० के बाद व्यापारिक समृद्धि धीरे-धीरे घटने लगी जो कि

---

१. तरंग ८ में म्लेच्छों का सीमांत जाति के रूप में उल्लेख है जो राजकुमार भोज के सहायक थे। म्लेच्छों को सम्मानित दृष्टि से नहीं देखा जाता था यह इस बात से स्पष्ट है कि कश्मीरी पंडित अभी भी अस्वच्छ, असभ्य नास्तिक के लिए म्लेच्छ शब्द का प्रयोग करते हैं। किंतु कल्हण ने इस शब्द से ग्रीक लोगों का भी निर्देश किया होगा।

कश्मीर के विदेशी व्यापार की सहगामिनी थी (इसका सर्वश्रेष्ठ काल सातवीं से नवीं सदी ई० तक था जब कि आसपास के पहाड़ी राज्यों पर कश्मीर का प्रभुत्व था और व्यापारिक मार्ग मध्य एशिया तक पहुँचते थे)। परिणामस्वरूप, कल्हण के समय से बहुत दिनों पूर्व ही, राज्य के सर्वाधिक धनी और शक्तिशाली वर्ग के रूप में व्यापारियों का महत्त्व घटने लगा था। राजतरंगिणी में उल्लिखित व्यापारी 'स्वभाव से धोखेबाज़' हैं। एक व्यंग्यात्मक टिप्पणी है, 'व्यापारी, जो धरोहरों का गबन कर चुके थे, हमेशा पवित्र ग्रंथों का पाठ सुनने के लिए उत्सुक रहते थे'। व्यापारी धोखेबाज़ी करते थे क्योंकि डमारों ने व्यापार करना शुरू कर दिया था।

कृषि और व्यापार में लगे हुए व्यक्तियों के अलावा और भी लोग थे जो समाज में विभिन्न काम करते थे। शिक्षकों, ज्योतिषियों, चिकित्सकों, मज़दूरों, दूकानदारों, कारीगरों, गाड़ीवानों, पानी खींचने वालों और चक्की वालों का भी राजतरंगिणी में उल्लेख है। सैनिक तो बहुत थे। इन व्यावसायिक वर्गों में भी जातियाँ और उपजातियाँ थीं।

प्रशासन को चलाने वाले राजा के अधिकारी दो प्रमुख वर्गों में बाँटे जा सकते थे—कुलीन वर्ग और कर्मचारी वर्ग (इन्हें कार्यस्थ भी कहा जाता था)। राज्य के उच्च अधिकारियों के रूप में कुलीन वर्ग के लोग बड़ी-बड़ी तनख्वाहें लेते थे, कुछ के पास तो बड़ी-बड़ी ज़मीन-जायदादें भी थीं। कर्मचारियों के अंतर्गत कुछ विशिष्ट अधिकारी आते थे जैसे गृहकृत्याधिपति, या सीधे-सीधे, महत्तम, परिपालक, मार्गेश या मार्गपति, शौल्किक, नियोगी और नगर, ग्राम के दिविर; जिनका कर्तव्य प्रायः राजस्व या कर वसूल करना था। यद्यपि इन कर्मचारियों को राजकीय कोष से तनख़्वाहें मिलती थीं, कई बार वे संदिग्ध तरीक़ों से अतिरिक्त आय भी अर्जित कर लेते थे। कल्हण कहते हैं कि जयापीड (४.६२९) के शासनकाल में कर्मचारी अभागी प्रजा की संपत्ति का गबन कर लेते थे और जो कुछ मिलता था उसका एक छोटा-सा अंश ही राजा को देते थे। दूसरे शासनकाल में भी वे उतने ही उत्पीड़क थे संभवतः इसलिए कि विभिन्न शासनकाल स्वल्पजीवी और अस्थायी थे और इनमें कई बार कर्मचारियों का परिवर्तन कर दिया जाता था; जब भी राजगद्दी पर नया शासक बैठता था, वह अपने चापलूसों की नये सिरे से नियुक्ति करता था।

राजतरंगिणी की पहली तीन तरंगों में कार्यस्थों का उल्लेख नहीं है। चौथी तरंग के बाद नए-नए पदनामों के साथ उनका उल्लेख बढ़ता जाता है। राजस्व और कर वसूल करने के लिए राजा को अधिक कर्मचारी नियुक्त करने पड़े होंगे; क्योंकि जनसंख्या बढ़ने के कारण ज़मीन पर अधिक दबाव पड़ा होगा और उपलब्ध कृषि-योग्य ज़मीन लोगों में बाँटना पड़ी होगी। कर्कोटों के पतन के

उपरांत जब विदेशी व्यापार समाप्तप्राय हो गया, राज्य को अपनी आय के लिए प्रमुखतः भूमिराजस्व पर ही निर्भर रहना पड़ा। अचल संपत्ति की देखरेख करने के लिए और ज़्यादा-से-ज़्यादा कर वसूल करने के लिए ज़्यादा कार्यस्थ रखने पड़े होंगे।

कल्हण का यह कथन कि कार्यस्थ (८,२३८३) ब्राह्मण होते थे काफ़ी रुचिकर है, क्योंकि इससे मालूम होता है कि कार्यस्थ किसी विशेष जाति का नाम नहीं था। ऐसा प्रतीत होता है कि जाति या धर्म की अपेक्षा के बिना सभी लोग कार्यस्थ के पद पर नियुक्त हो सकते थे। माली भी (७.३९-४०) कार्यस्थ बन सकता था। निम्न पद पर नियुक्त कार्यस्थ की उच्च पद पर पद-वृद्धि हो सकती थी।

राजा उच्चल 'प्रजा-रंजक' थे और 'स्वभाव से लालची नहीं थे' (तरंग ८); उन्होंने (मारक और भ्रष्ट) कर्मचारियों से लोगों का बचाव करने के लिए क़दम उठाए थे, उनका मूलोच्छेद करते हुए। कर्मचारियों के पीड़न का वर्णन करते हुए कल्हण लिखते हैं :

> सचमुच, हैजा, पेट दर्द और पाँसों के समान कर्मचारी इस दुनिया को सताते हैं और प्रजा के लिए दूसरे संक्रामक रोग के समान हैं। (८८)
>
> केकड़ा अपने पिता को मारता है, दीमक अपनी माँ को नष्ट कर देती है; किंतु कृतघ्न राजकर्मचारी, अधिकार प्राप्त करके, सभी को मारता है। (८९)
>
> राज्याधिकारी और विषवृक्ष, आश्चर्य है, जिस ज़मीन पर बढ़ते हैं उसी को अगम्य बना देते हैं। (९१)
>
> महत्तम सहेल व अन्यों को पदच्युत करके राजा ने उन्हें जेल में सन के कपड़े पहनने को मजबूर किया। (९३)
>
> एक-दूसरे को नग्न करके उन्होंने गाड़ी से बँधवा दिया, उसका आधा सिर घुटा हुआ था और गुँथे हुए बालों पर श्वेत चूर्ण छिड़क दिया गया था। (९७)
>
> ढिंढोरा पीटे जाने से और अपने सजाए हुए सिरों से मजाकिया नाम वाले ये अपमानित अधिकारी सर्वत्र बदनाम हो गए। (९८)

सही काम करने वाले कार्यस्थ भी थे जो विचारपूर्वक ज़िम्मेदारी से काम करते थे। एक बार ललितादित्य (तरंग ४) मदहोश था। अपनी राजधानी परिहासपुर से दूर प्राचीन नगर प्रवरपुर के दीपकों को देखकर उसने अपने मंत्रियों को उसे जला डालने का आदेश दिया। उन्होंने उसके बदले में घोड़ों की घास जला डाली जिससे मदहोश राजा यह समझा कि उसकी आज्ञा पूरी कर दी गई है। दूसरे दिन, ललितादित्य ने सही काम करने के लिए उनकी प्रशंसा की व कहा,

"जब मैं नशे में रहूँ, तब मेरे द्वारा दिया गया कोई भी मौखिक आदेश पूरा न किया जाए।" कल्हण की निम्नलिखित टिप्पणी आधुनिक राजकर्मचारियों के लिए भी उपयोगी हो सकती है :

'वे अधिकारी निंदनीय हैं जो अपने स्वार्थ, वेतन और आराम के लिए राजा के अशोभनीय आमोद-प्रमोद को बढ़ावा देते हैं जो कि उसी तरह पृथ्वी का स्वामी है जिस तरह कोई व्यक्ति कुछ समय के लिए ही वेश्या का स्वामी रहता है। उन उदात्त व्यक्तियों के द्वारा ही यह वसुंधरा पवित्र है जो अपने जीवन की उपेक्षा करके भी ग़लत राह पर जाने से राजा को बलपूर्वक रोकते हैं।' (३२१)

यद्यपि जातिप्रथा नहीं थी, राजतरंगिणी में कई निम्न जातियों का उल्लेख है—निषाद, किरात, कैवर्त, डोम्ब, श्वपाक और चांडाल। ब्राह्मण लोग जब से दूसरी जगहों से कश्मीर घाटी में आये थे, तभी से विशेषाधिकार-प्राप्त वर्ग में आते थे और उन्हें सारे सम्मान प्राप्त थे। वे राजा के मंत्री और सलाहकार थे। उनकी इच्छानुसार उन्हें सैनिक और राजनीतिक पद भी मिल जाते थे, यद्यपि उनमें से अधिकांश लोग शास्त्रों को पढ़ाकर या पौरोहित्य करके अपनी जीविका चलाते थे। मंदिरों के पुरोहित सुसंपन्न थे। राजाज्ञा (२, १३२;५, ५८-६२) द्वारा मंदिरों से संलग्न ग्रामों का राजस्व उन्हें मिलता था और कभी-कभी वे लोगों को फूल, धूप आदि पूजा-सामग्री बेचते थे (५, १६८)।

निषाद संभवतः आदिवासी जाति थी। कल्हण के अनुसार, एक दूसरी निम्न जाति के लोग, किरात, जंगलों में शिकार करके अपना पेट भरते थे। वे अक्सर छोटे-मोटे काम करने वाले डोम्ब लोगों का एक जाति के रूप में उल्लेख करते हैं, जिनका संबंध प्रायः चांडालों[1] से बतलाया गया है। कल्हण डोम्ब लोगों का गायक और संगीतज्ञ के रूप में उल्लेख करते हैं—आज भी वे लोकगीत गायक के रूप में विद्यमान हैं।

सामान्य रूप से, शेष भारत में ज्ञात, चार प्रमुख पारंपरिक जातियाँ कश्मीर में अज्ञात थीं। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जैसी जातियाँ नहीं थीं। कश्मीरी लोग अपने-अपने व्यवसाय के आधार पर वर्गों में बँटे हुए थे। डमार, जैसाकि बतलाया जा चुका है, ज़मीन से संबंधित थे। उद्योग और वाणिज्य व्यापारियों के हाथ में थे जिनकी भूमिका पहले ही बतलाई जा चुकी है। यद्यपि भूमि-वितरण-प्रणाली में राज्य का हाथ रहता था; प्राचीन कश्मीर में राज्य निजी उद्योग या संपत्ति में

१. जहाँ तक चांडालों का प्रश्न है, अल्बेरुनी और कल्हण दोनों यह उल्लेख करते हैं कि उन्हें हत्यारों के रूप में भाड़े पर लिया जाता था। अतः आश्चर्य नहीं कि कश्मीरी अभी भी अस्वच्छ, घृणित व्यक्ति को चांडाल कहते हैं।

बहुत कम टाँग अड़ाता था। किंतु संपत्ति के उपार्जन के लिए जो लोग ज़िम्मेदार थे, उन्हें अपने परिश्रम के फल का उपभोग करने के लिए अकेला नहीं छोड़ दिया जाता था; कई ऐसे विशेषाधिकार-प्राप्त व्यक्ति थे जो उसमें कम-ज़्यादा अपना हिस्सा बँटाते थे, और यह धन-वितरण-प्रणाली पर आधारित था।

जब एशियाई लोग धर्म-योद्धाओं का सामना कर रहे थे; तब लिखते हुए कल्हण ऐसे राजाओं और अधिनायकों की टोलियों का वर्णन करते हैं जो ब्राह्मण अनुयायियों, दरबारियों और सुंदर चंद्रमुखी वनिताओं के साथ श्रीनगर आए जिसे प्राचीन राजधानी प्रवरसेनपुर के पास अशोक ने बसाया था। वे नगर के उन सीमा-चिह्नों का उल्लेख करते हैं जो आज भी हैं और बीते हुए युग के दरबारी षड्यंत्रों व परस्पर-विनाशी युद्धों की पाठक को याद दिलाते हैं, जिसे बीच-बीच में शांति मिलती है मंदिर और धार्मिक संस्थानों में। नगर के वे सीमा-चिह्न हैं गोप-पर्वत (वह क्षेत्र जिसे आजकल गुपकर कहते हैं), ऊपर है ज्येष्ठरुद्र का प्राचीन मंदिर (शंकराचार्य मंदिर); शारिका-पर्वत (हरि पर्वत) और आगे 'मार्तण्ड का भव्य मंदिर।'

राजतरंगिणी कश्मीरी स्त्रियों के जीवन का भी अच्छा परिचय देती है। पिता के घर में बिताए हुए जीवन के प्राथमिक भाग में वे काफ़ी अच्छी शिक्षा प्राप्त कर लेती थीं। वे संस्कृत और प्राकृत दोनों धाराप्रवाह बोल सकती थीं। सार्वजनिक क्षेत्र में रानियों और दूसरी स्त्रियों ने जो सफलता पाई थी उससे यह पूर्वकंल्पना कर सकते हैं कि उन्हें पर्याप्त शिक्षा-दीक्षा मिली थी। उदार सौंदर्य-वादी के तरीक़े से, कल्हण भी स्वयं स्त्री-रूप के प्रशंसक थे। कालिदास के समान, वे स्त्रियों के सौंदर्य पर अनुरक्त थे, विशेषकर स्कंधों के सौंदर्य पर। प्रथम तरंग (२५३) में वे नागपति की कन्या का उल्लेख करते हैं—'अत्यंत सौंदर्यमयी रमणी' जिसका हाथ 'कमल के समान' था। 'आकर्षक नेत्रों वाली' ब्राह्मण की पत्नी ने अपनी 'लंबी उँगलियों वाली हथेली की सुनहली छाप' नर पर छोड़ दी जो उस पर मोहित हो गया था। तरंग ८ (३६६) में उच्चल की रानियों का वर्णन करते हुए कल्हण कहते हैं, "आह, दुर्बोध हृदय वाली ये स्त्रियाँ! उनके सघन केशों का लहराना, उनके नेत्रों के परम विलास, उनके वर्तुल स्तनों की कठोरता —ये सब पिंडित होकर उनके अंतर्तम अंतर में रहते हैं—कोई उन्हें समझ नहीं सकता।" स्त्रियों की गूढ़ता के विषय में लिखने वाले महान् कवियों के तरीके से, वे रानियों के विषय में आगे लिखते हैं, "यद्यपि असतीत्व और पतिघात की ओर भी उनकी प्रवृत्ति रहती थी, फिर भी वे सहज ही अग्नि में प्रवेश कर जाती थीं। कोई भी, कैसे भी स्त्रियों का विश्वास नहीं कर सकता।"

केवल स्त्रियों का सौंदर्य ही प्रशंसा का कारण नहीं था। स्त्रियाँ मुक्त साधन भी थीं—स्त्रियों की समानता और मुक्ति का आर्य-अंगीकार १२वीं सदी ई०

तक बना रहा। यह संभव है कि कश्मीर में स्त्रियों को संपत्ति पर कुछ अधिकार प्राप्त था और उनकी स्वतंत्र कानूनी स्थिति थी। यह रुचिकर है कि संस्कृत में पर्दे के लिए कोई शब्द नहीं है—इसकी कल्पना और प्रयोग मुसलमानों द्वारा भारत में आयातित है। इसी प्रकार संस्कृत-भाषा में हरम के लिए भी कोई शब्द नहीं था। शेष भारत के समान, कश्मीर के राजाओं की भी अनेक पत्नियाँ हुआ करती थीं जो अंतःपुर या शुद्धांतः में रहती थीं। कल्हण की राजतरंगिणी से मालूम होता है कि स्त्रियों का किसी प्रकार का पृथक्करण नहीं था, और न ही उन्हें अलग-थलग या पर्दे में रखा जाता था। कल्हण उल्लेख करते हैं कि किस प्रकार, प्राचीन विधि और परंपरा का पालन करते हुए, राज्याभिषेक के समय अपने पतियों के साथ कश्मीर की रानियाँ भी पवित्र जल से अभिसिंचित की जाती थीं और रानियों के निजी सलाहकार, स्वीकृत धन और अलग खजांची हुआ करते थे। अपने सलाहकारों की सहायता से रानी राजकीय मामलों में सक्रिय भाग लेती थी। अतः आश्चर्य नहीं कि दिद्दा, सगंधा, सूर्यमती और दूसरी रानियाँ शासनकार्य में पुरुष-तुल्य थीं। रानियों से नीचे दर्जे की भी स्त्रियाँ कल्हण के द्वारा राज्य के कार्यों में उल्लेखनीय भाग लेती हुई दिखलाई गई हैं। रानियों के चुनाव में जाति पर ध्यान नहीं दिया जाता था। राजा चक्रवर्मा (९२३-९३३ ई०) ने एक डोम्ब स्त्री से विवाह किया था और उसे पटरानी बनाया जिसे चामर झुलाए जाने जैसे विशेषाधिकार प्राप्त थे' (५,३८७)। कल्हण बतलाते हैं कि किस प्रकार श्रीनगर के समीप रमास्वामी विष्णु के पवित्र मंदिर में वह राजकीय समारोह सहित गई और किस प्रकार उसके संबंधी मंत्री बनाए गए। वस्तुतः, इस विवाह के समर्थक व्यक्ति उत्तरवर्ती राजाओं के भी मंत्री बने। कल्हण ने ललितादित्य जैसे यशस्वी सम्राट् और उसके भाई चंद्रापीड की कोई बुराई नहीं की जो दिल्ली के पास स्थित रोहतक की एक 'तलाकशुदा' बनिया स्त्री से उत्पन्न राजपुत्र थे।

विधवा से यह आशा की जाती थी कि वह पवित्र, अनासक्त जीवन बिताएगी आभूषण या भड़कीली वेशभूषा सहित दूसरे कोई भी भोगविलास उसके लिए अनुमत नहीं थे (८.१९९९)। एक स्थान पर यह उल्लेख है कि मृत पति की अचल संपत्ति का उत्तराधिकार विधवा को (न कि पुत्रों को) मिला। कल्हण ने ऐसी स्त्रियों के विषय में कोई मत व्यक्त नहीं किया है, स्पष्ट है कि वे सती नहीं बनीं। वे सती-प्रथा का प्राचीन काल से ही चला आना बतलाते हैं और उदाहरण देते हैं—राजा शंकरवर्मा (५, २९९) की मृत्यु पर सुरेंद्रवती और दूसरी दो रानियाँ सती हो गईं; त्रैलोक्यदेवी, सूर्यमती और कुमुदलेखा नामक रानियों ने चिता में प्रवेश किया था; इसी प्रकार उच्चल का शवदाह (८,३६८) होने के कुछ दिनों पश्चात् जयमति ने अग्नि-प्रवेश किया। सती-प्रथा केवल राजवंशों तक ही सीमित नहीं थी। कल्हण के अनुसार कभी-कभी वेश्याएँ और रखैलें भी अपने

प्रेमियों के साथ सती हो जाती थीं—चाहे वे राजा हों, या मंत्री या अन्य उच्चाधिकारी। तरंग ८ (४४८) में एक उल्लेख है कि दिल्हभट्टार्का अपने भाई के साथ अग्नि-प्रविष्ट हुई।

दूसरा पहलू भी दृष्टिगत होता है। स्त्रियों के कुछ वर्गों में विद्यमान अतिशय अनैतिकता के उदाहरणों से राजतरंगिणी भी हुई है। मंदिरों में गाने और नाचने के लिए देवदासी के रूप में लड़कियों को समर्पित करने की भारतीय प्रथा कश्मीर में भी थी। मंदिर से किसी भी देवदासी को अपने हरम में ले जाने के राजाओं के विशेषाधिकार का कल्हण उल्लेख करते हैं।

स्त्रियों की बुराइयों को साफ़-साफ़ देखते हुए, कल्हण उनका और उनकी सनक में सहायक मौका-परस्तों का सख्ती से भंडाफोड़ करते हैं। युवा सुगंधादित्य (तरंग ५) राजा की दो रानियों को उसी प्रकार संतुष्ट करता था, जिस प्रकार 'घोड़ा घोड़ियों को':

> दिन-प्रति-दिन वह, एक के बाद एक, दोनों की सेवा में उपस्थित रहता था, उनके विलासों को बढ़ाने के लिए, दो गरीब स्त्रियों के बीच स्थित एक भोजन-पात्र के समान। (२८५)
>
> अपने-अपने पुत्रों के लिए राजगद्दी प्राप्त करने हेतु, एक-दूसरे से प्रति-स्पर्धा करते हुए, दोनों ने अपने मंत्री को मैथुन की सुविधा प्रदान की, खज़ाने के पुरस्कार रूपी मानदेय सहित। (२८६)

रानी दिद्दा (तरंग ६) वास्तव में विरोधाभासों का समुच्चय थी : उसने अनेक विहार बनवाए; किंतु पुण्य के ये कार्य उसकी 'विलास-तृष्णा' और शक्ति-लिप्सा के कारण उल्टे पड़ गए। जब उसने अपने शिशु-प्रपौत्र को 'जादू-टोने' के द्वारा मरवा डाला, कल्हण ने निम्नलिखित तीक्ष्ण टिप्पणी लिखी :

> पवित्र कुंड में रहते हुए और मौनव्रत धारण करने पर भी तिमि मछली अपनी जाति वालों को खा जाती है, मेघ के जलकणों से जीवित रहने वाला मयूर रोज़ साँप खाता है; प्रकट में ध्यान धारण करनेवाला बगुला सतह पर आनेवाली निःशंक मछलियों को अपना भोजन बना लेता है; पवित्र आचरण करते हुए भी पापी कब फिर से पाप कर बैठेगा, इसका कोई निश्चय नहीं। (३०९)

कल्हण नीच मनोवृत्ति वाली औरतों के लिए 'शर्म शर्म' कहते हैं, जब कलश (तरंग ७) की मृत्यु पर उसकी प्रेमिका कय्या ने एक गँवार को अपनाया :

> विलासमय जीवन बिताने से कांतिमान् व राजा द्वारा उपभोग्य अपने शरीर

को उसने एक ग्रामीण की क्रीड़ा-वस्तु बना दिया; नीच वृत्ति वाली स्त्रियों का नाश हो।

विविध योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए 'प्रभुत्व बतलानेवाली' अपनी पत्नी के द्वारा प्रोत्साहित किया जाने वाला राजा अनंत स्त्रियों के विषय में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त करता है :

स्वाभिमान, कीर्ति, प्रभुसत्ता, शक्ति, बुद्धि और धन, आह ! क्या-क्या मैंने नहीं खोया पत्नी का आज्ञाकारी बनकर। (४२३)

व्यर्थ में ही लोग स्त्रियों को मर्दों की पूँछ समझते हैं; अंत में तो आदमी ही औरतों के हाथ का खिलौना है। (४२४)

जादू या सौंदर्य के द्वारा स्त्रियों ने कुछ पतियों को शक्तिहीन बना दिया, कुछ को बुद्धिहीन, कुछ को पौरुषहीन और कुछ को प्राण-विहीन। (४२६)

ऊपर के अंश को पढ़कर यह धारणा न बने कि कल्हण एक प्रकार के स्त्री-द्वेषी थे; इसलिए नीचे (तरंग ७ से) उद्धृत है, कालिदास के वर्णनों से तुलनीय, राजा हर्ष के दरबार की कांतिमयी महिला-मंडली का कल्हण-कृत वर्णन :

केतक के स्वर्णपत्र से जटित टोपी पुष्पमालाओं से सज्जित थी; तिलक के चंचल प्रसून सुंदर मस्तक का आलिंगन कर रहे थे; काजल की रेखाएँ अक्षिकोणों को कानों से जोड़ रही थीं; स्वर्णमंडित फुंदे चोटियों में गुँथे हुए थे; अधोवस्त्रों के लटकते हुए छोर फ़र्श को चूम रहे थे; स्तनों से चिपकी हुई चोलियों द्वारा भुजाओं का ऊपरी हिस्सा ढँका हुआ था; कुटिल भौंहों वाली रमणियाँ कर्पूरचूर्ण-सी उज्ज्वल मुस्कान सहित यहाँ-वहाँ घूम रही थीं; जब वे पुरुषों के वस्त्र पहनती थीं तब वे छद्मवेशी कामदेव के सौंदर्य को धारण करती थीं। (९२८-३१)

भारत के दूसरे भागों के अनेक भारतीयों की अपेक्षा कश्मीरी अधिक अंध-विश्वासी थे, यह सुविदित है। वे लोगों के जीवन को प्रभावित करने वाले जादू-टोने में विश्वास रखते थे। कल्हण के वर्णनों से यह सिद्ध होता है कि प्राचीन कश्मीर में जादू-टोना बहुत प्रचलित था। वे जादू-टोने के शिकार राजाओं का उल्लेख करते हैं। ऐसा लगता है कि जादू के असर में कल्हण भी दूसरे लोगों के साथ विश्वास करते थे। वर्णित घटनाओं में अलौकिक शक्तियों पर विश्वास करने की उनकी मनोवृत्ति का यही कारण हो सकता है।

कवि के रूप में कल्हण

राजतरंगिणी प्राचीन कश्मीर के विषय में विस्तृत विवरण प्रदायक एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक अभिलेख है। किंतु कल्हण का यह पुरालेख न तो वोल्टेयर-कृत 'हिस्ट्री ऑफ़ एशिया' है और न गिबन-कृत 'डिक्लाइन एंड फॉल ऑफ़ दि रोमन एम्पायर'। कल्हण की रचना न केवल इतिहास को एक मूल्यवान् देन है; बल्कि प्रमुखतः एक काव्यकृति भी है। वे अपने को न केवल एक इतिहासकार, बल्कि एक कवि भी समझते थे। ग्रंथ के प्रारंभ में ही प्रास्ताविक अध्याय में अपने कार्य को समझाते हुए कल्हण कहते हैं :

> सच्चे कवियों की वह शक्ति, चाहे जैसी भी हो, प्रशंसनीय है जो अमृत की धारा से भी बढ़कर है; क्योंकि इसके द्वारा उनके स्वयं के, साथ ही दूसरों के भी, यशःशरीर अमर हो जाते हैं। प्रजापति के समान और सुंदर निर्मिति करने में निपुण कवियों के अतिरिक्त और कौन अतीत को मानःचक्षु के सामने रख सकता है?

अपनी कृति के प्रारंभ में ही कवि की विशेषताओं का कल्हण द्वारा उल्लेख उस संबंध पर ज़ोर देता है जो वे अपनी काव्यकला और अपने लंबे आख्यान की विषयवस्तु के बीच बनाए रखना चाहते हैं।

कल्हण की साहित्यिक शिक्षा-दीक्षा अत्यंत कठोर थी। उन्होंने लौकिक साहित्य का विशेष अध्ययन किया था और व्याकरण तथा अलंकारशास्त्र के सूक्ष्म शास्त्रों पर उन्हें पूर्ण अधिकार था। महाकाव्य रामायण और महाभारत में, साथ ही दूसरे ऐतिहासिक प्रबंधों में भी उन्हें अत्यधिक रुचि थी। किंतु उन्होंने दूसरे काव्यों की अपेक्षा महाभारत से अधिक उद्धरण दिये हैं। कन्नौज के राजा हर्षवर्धन के वीर कार्यों का वर्णन करनेवाली आख्यायिका बाण-कृत हर्षचरित तथा बिल्हण-कृत विक्रमांकदेवचरित ने कदाचित् कल्हण को अत्यधिक प्रभावित किया था। अपनी राजतरंगिणी में वे कवि-बिरादरी के भूतपूर्व सदस्यों को अत्यधिक धन्यवाद देते हैं जिनसे उन्होंने काफ़ी कुछ सीखा—"सत्कवियों का वह

अनिर्वचनीय चरित्र वंदनीय है जो (माधुर्य और अमरत्व में) अमृत की धारा से भी श्रेष्ठ है और जिसके द्वारा वे स्वयं के, और दूसरों के भी, यशःशरीर को चिर-जीवी रखते हैं।"

कल्हण के समकालीन कवि मंख ने इस बात पर ध्यान दिया है कि कथाओं व आख्यानों के अध्ययन हेतु अपने उत्साहमय प्रेम की कल्हण कोई सीमा नहीं जानते थे। शासन-तंत्र, अर्थशास्त्र, ज्योतिष, तथा कामशास्त्र-सहित दूसरे शास्त्रों व विज्ञान से कल्हण घनिष्ठ परिचय रखते थे। फिर भी, इतिहासकार के नाते, कल्हण कला और मानवीय अध्ययन पर, आर्थिक जीवन की अपेक्षा, अधिक ज़ोर देते हैं; हालाँकि अनाज के मूल्य, मुद्रा, कर-निर्धारण और अकाल के यथावत् वर्णन मिलते हैं। प्राचीन भारतीय ज्ञान और पौराणिक आख्यानों के अनेक उल्लेख हैं, उदाहरणार्थ, गंगावतरण और समुद्रमंथन। रणजित् सीताराम पंडित के अनुसार, कश्मीर में अप्राप्त भारतीय पशु-पक्षियों व पौधों—जैसे आम, ताड़, सिंह, मगर इत्यादि—का कल्हण द्वारा उल्लेख यह बतलाता है कि वे भारतीय शास्त्रों में निष्णात थे।

आकार-प्रकार में काव्य (चरित) राजतरंगिणी में आठ हज़ार श्लोक हैं जिन्हें आठ तरंगों में बाँटा गया है। फिर भी, यह दूसरे चरितों की अपेक्षा कुछ अलग है; क्योंकि कल्हण ने प्राचीत काल से लेकर अपने समय तक के कश्मीर पर शासन करने वाले राजवंशों का संबद्ध विवरण दिया है। महाकाव्यों के काव्य-सौंदर्य और मानवीय रुचि से उत्साहित होकर गहन विद्वत्ता-युक्त कल्हण ने अपने देश का इतिहास यशस्वी पूर्वसूरियों के तरीक़े से वर्णित करने का बीड़ा उठाया। उन्होंने छन्दोबद्ध रूप को अपने समय की साहित्यिक व ऐतिहासिक स्वयंसिद्धि और साथ-ही-साथ अभिव्यक्ति का सहज माध्यम अंगीकृत किया। उन्होंने राज-तरंगिणी को यथावसर काव्य-शास्त्रीय अलंकारों से अलंकृत किया।

फिर भी राजतरंगिणी ऋतुओं और दृश्यों के ऊबा देने वाले वर्णन तथा निरंतर उपमाओं से मुक्त है जो कि महाकाव्यों की जीर्ण परिपाटी थी। इन अलंकारों से हटकर, राजतरंगिणी के अधिकांश भाग में प्रत्यक्ष और सरल शैली दृष्टिगोचर होती है। कल्हण यह स्पष्ट कर देते हैं कि वे जानबूझ कर सर्वमान्य साहित्यिक परंपरा का तिरस्कार नहीं कर रहे; और न ही वे 'काव्य-विस्तार' के कौशल से विहीन हैं। हम देख चुके हैं कि उन्होंने पारंपरिक अलंकारों का प्रयोग निक्षिप्त रूप से किया ही है। यह स्मरणीय है कि कल्हण अपने विषय को उसके अंतर्वर्ती मूल्य के लिए उतना नहीं, जितना कि पारंपरिक काव्य-लेखन हेतु उसके द्वारा प्रदत्त अवसर के लिए सम्मानित दृष्टि से देखते थे। "आख्यान को दृष्टि में रखते हुए विस्तार के द्वारा विविधता प्राप्त नहीं की जा सकती, फिर भी इसमें ऐसा कुछ मिल ही सकता है जो सज्जनों को प्रसन्न कर दे।" फिर भी, हर्षचरित

और विक्रमांकदेवचरित की अपेक्षा कल्हण के भटकाव बहुत कम हैं; क्योंकि उन्हें 'आख्यान की लंबाई' के विषय में चिंता थी। एच० एच० विलसन[1] राजतरंगिणी के संबंध में कहते हैं, "सभी विषयों पर लिखे गए अनेक हिंदू प्रबंधों के समान, यह पद्य में है, और कविता के रूप में इसके अंतर्गत भाव या शैली के कई प्रशंसनीय अंश हैं।" विलसन, जिनकी प्रशंसा बहुत पहले १८२५ ई० में 'एशियाटिक रिसर्चेज' में प्रकाशित हुई थी, अपनी प्रस्तावना में कहते हैं, "जिसे कुछ औचित्य तक इतिहास का नाम दिया जा सकता है ऐसा अभी तक अन्वेषित संस्कृत-प्रबंध एक ही है—राजतरंगिणी, कश्मीर का इतिहास।"

कल्हण यह स्वीकार करते हैं कि उनके आख्यान की विषयवस्तु ने उनकी काव्यकृति को प्रभावित किया है। अलंकारशास्त्र के नियमानुसार यह अनिवार्य है कि काव्य, या उसके प्रमुख भाग, का एक प्रधान रस होना चाहिए। काव्यप्रकाश के लेखक, कश्मीरी अलंकारशास्त्री, मम्मट कहते हैं कि काव्य का एक उद्देश्य जीवन की कला (व्यवहारविद्या) सिखाना है। काव्य की एक परिभाषा है 'वह वाक्य जिसकी आत्मा रस है' रस आठ थे—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भय, वीभत्स और अद्भुत। इन्हें काव्य का सार कहा गया है। जहाँ तक इन रसों का प्रश्न है, कल्हण ने मम्मट का अनुसरण किया; किंतु उन्होंने एक और नवम रस शांतरस जोड़ दिया। कल्हण, अपनी कृति में प्रमुख, इस रस के विषय में पूछते हैं, "यदि कोई कवि अपनी प्रतिभा से ऐसी चीजें जान सकता है जो हर कोई नहीं जान सकता; तो इसके अलावा और कौन-सा संकेत यह बतलाएगा कि उसके भीतर दिव्य ज्योति विद्यमान है?" वे पाठक से धीरज रखने के लिए कहते हैं, शीघ्र निर्णय न देकर।

कल्हण द्वारा चुना गया काव्य का रूप राजतरंगिणी की शैली निर्धारित करता है। कवि की कला को व्यक्त करने वाले रूपक, उपमा, श्लेष आदि अलंकार राजतरंगिणी में पर्याप्त रूप से निखरे पड़े हैं। बदलते हुए दृश्य के अनुरूप, सर्ग के आदि और अंत में छंद बदल जाते हैं। युधिष्ठिर का निष्क्रमण, चक्रवर्मा या सुस्सल का राजधानी में विजयप्रवेश, भिक्षाचर का अंतिम युद्ध और हर्ष की मृत्यु जैसे वर्णनों में अनलंकृत वर्णन करने का कल्हण का कौशल द्रष्टव्य है। उनकी एस्चिलस और होमर से तुलना करते हुए पंडित की यह प्रशंसा ठीक ही है कि वे 'सच्चे और सार्वजनीन कवि हैं।' कल्हण के लेखनी चित्रों में कश्मीर का अतीत ज्वलंतरूप से सजीव और पुर्नानिमित हो गया है। उनके प्रबंध के असाधारण गुण —उनके काव्यकौशल—ने कश्मीर के प्राचीन इतिहास को विस्मृत होने से बचा लिया है।

---

१. विलसन एच० एच०, दि हिंदू हिस्ट्री ऑफ़ कश्मीर, पुनर्मुद्रण, सुशील गुप्त (इंडिया) प्रा० लि०, कलकत्ता, १९६०।

वर्णन करने के कल्हण के अप्रतिम कौशल के उदाहरणस्वरूप, उपर्युक्त नाटकीय घटनाओं से संबंधित, उद्धरण राजतरंगिणी से देखे जाएँ।[1]

युधिष्ठिर को, जिसे उसके मंत्रियों ने राजगद्दी छोड़ने के लिए मजबूर किया, 'उनके द्वारा अपना देश छोड़ने के लिए अनुमति दे दी गई।' प्रथम तरंग में राजा और उनके परिजनों के भागने का इस प्रकार वर्णन है :

मनोरम पहाड़ी मार्गों से जाते हुए थक जाने पर राजा वृक्षों के नीचे कुछ देर रुककर विश्राम करता था, तब फिर आगे बढ़ते हुए वह अपनी महती पीड़ा को भूल जाता था; कभी-कभी दूर से अपने कानों में पड़ने वाली अशिष्टों की चिल्लाहट से जागकर वह निराश हो जाता था और उसका मन जलप्रपात की धारा के समान गहराई में डूब जाता था। (३६९)

अनेकों प्रकार की लताओं और पौधों की गंध से सुगंधित जंगलों तथा काई से चिकनी शिलाओं वाले पहाड़ी झरनों को पार करके कमल-लता के समान शरीर वाली उसकी रानी थककर उसकी गोद में अपनी देह रखकर बेहोश हो जाती थी। (३७०)

सीमांत पर्वत के कगार से जब राजमहल की स्त्रियाँ पुष्पांजलि द्वारा विदाई दे रही थीं, तभी पहाड़ों की कंदराओं में बने हुए अपने घोंसलों में विश्राम करते हुए पंछी उत्तेजित होकर झुंड के झुंड उड़कर आए और अपने पंख फैलाकर व ज़मीन की ओर अपनी चोंच झुकाकर चिल्लाने लगे। (३७१)

सिर से फिसल जाने वाले अपने आँचल को अपनी छाती पर बाँध लेने वाली रानियाँ दूर से अपनी मातृभूमि को देखती हुई अपने माथे पर हाथ रखकर आँसू बहाने लगीं जो रास्ते में झरने के समान बहने लगे। (३७२)

अपनी मधुर पदरचना और मधुर गुणों के कारण प्रशंसनीय मूल पद्यों का सौंदर्य गद्यानुवाद में कुछ दब गया है; किंतु करुण-रस के चित्रण को हम फिर भी महान् संस्कृत लेखकों (चाहे वे कवि हों या नाटककार) या शेक्सपियर के चित्रणों से तुलना कर सकते हैं। वही अतिशय मुखर भाव विद्यमान है राजा हर्ष की मृत्यु के वर्णन में (तरंग ७), जिसे एक झोंपड़ी में आश्रय लेने पर, डमारों ने विश्वासघातपूर्वक मार डाला था :

प्रहार करनेवाले राजा के हथियार से बचकर उस शस्त्रधारी ने राजा की छाती पर जल्दी-जल्दी छुरे से वार किये। (१७११)

'हे महेश्वर' इन शब्दों का दो बार उच्चारण करके, प्राणान्त हो जाने से, वह जड़ कटे हुए पेड़ के समान ज़मीन पर गिर पड़ा। (१७७२)

१. इस पृष्ठ पर व अन्यत्र दिये गए उद्धरण रणजित् सीताराम पंडित-कृत राजतरंगिणी के गद्यानुवाद से हैं।

भागकर चोर के समान आश्रय लेने के कारण, यद्यपि वह शक्तिशाली राजा था, उसे इस तरह झोंपड़ी में मरना पड़ा। (१७१३)

पूर्ण वैभवशाली कोई भी राजा उसके समान इस अवस्था में नहीं देखा गया और किसी भी दूसरे का इस प्रकार अपमानजनक अंतिम संस्कार नहीं हुआ। (१७१४)

या कदाचित् इसका एक ही कारण था—युद्ध में अरुचि—जिसके कारण उस उदात्त राजा की हर प्रकार से रमणीय उच्च स्थिति नष्ट-भ्रष्ट हो गई। (१७१५)

जिसे नौकरों ने छोड़ दिया था और जिसका वंश नष्ट हो गया था, उसे नग्न दरिद्र के समान गौरक नामक किसी टालवाले ने जला दिया।(१७२७)

यह उल्लेख करते हुए कि 'हर्ष की प्रेमिकाओं में से किसी ने भी उसके लिए विलाप नहीं किया' और न ही उसका कोई अनुयायी 'मौत में उसके साथ रहा या शरणस्थल में गया'; तरंग के उपांत पद्य में मानवीय अनुभूतियों की चपलता के विषय में कल्हण अपना दार्शनिक मत व्यक्त करते हैं :

आरंभ में शून्य रहता है और अंत में भी निश्चय ही शून्य रहता है; बीच में मौके की बात है कि मनुष्य सुख-दुःख की नियामक दशाओं से अत्यंत शीघ्र प्रभावित हो जाता है। बिना सिर और पैर के अभिनेता के समान बार-बार अपनी भूमिका अदा करके मनुष्य विद्यमान पर्दे के पीछे अदृश्य हो जाता है—हमें पता भी नहीं चलता कि वह कहाँ जाता है। (१७३१)

तांत्रिक भाड़े के टट्टुओं की पराजय और एक चापलूस द्वारा एक बहादुर राजन्य की हत्या के बाद राजधानी श्रीनगर में चक्रवर्मा के विजयप्रवेश का वीर-रस में वर्णन (तरंग ५) कल्हण की काव्यकला को चित्रित करता है :

तब दूसरे दिन जब टूटी हुई तंत्रियों को शंभुवर्धन संघटित कर रहा था; उसी समय अधिनायकों, मंत्रियों, एकांगों और दरबारियों सहित, विभिन्न मार्गों से आकाश को भरते हुए आनेवाले उल्लसित सैनिकों के साथ, जिसका घोड़ा अश्वारोही अंगरक्षकों के बीच गर्व सहित उछल रहा था, जो लगाम को पकड़ने वाले अपने बाएँ हाथ से फिसले हुए शिरस्त्राण को उठा रहा था; पसीने से गीले दूसरे हाथ में पकड़ी हुई चमकीली मूठ से जिसके कुंडल दीप्त हो रहे थे, अपने उन्नत कठोर कवच के गरदन पर पड़नेवाले जोर से खीझकर भौंहें चढ़ाने से जिसका चेहरा भयंकर हो जाता था, दूकानों को लूटनेवालों को जो क्रोधपूर्वक धमका रहा था और अपने सिर व आँखों के इशारों से जो डरे हुए नागरिकों को आश्वस्त कर रहा था उस विजयो-

न्माद से उल्लसित चक्रवर्मा ने, नागरिकों के आशीर्वचनों को डुबा देने वाले नगाड़ों के शोर के बीच, नगर में प्रवेश किया। (३४१-३४७)

विजयोन्मत्त होकर जब वह सिंहासन पर बैठा, तब शंभुवर्धन को हथकड़ी पहनाकर भूभट कहीं से लाया। (३४८)

राजा के सामने इस पापी ने, अपनी राजभक्ति बतलाने के लिए, तलवार के प्रहार के डर से आँखें मूँद लेनेवाले शंभुवर्धन को, चंडाल के समान, मार डाला। (३४९)

भिक्षाचार के अंतिम युद्ध (तरंग ८) के अत्युत्तम वर्णन में करुण और वीर-रस एक-दूसरे से लगभग सम्मिश्र हैं। निम्नलिखित में से कुछ पद्य लौकिक वीर-रस-पूर्ण पद्यों से अच्छी तरह बराबरी कर सकते हैं, चाहे वे पूर्व के हों या पश्चिम के :

जब सिंह के समान भिक्षाचर बाणों के पिंजरे को तोड़कर निकल रहा था, तब खसों ने ऊपर से पत्थर बरसाए। (१७६२)

जब वह पीछे हट रहा था, तब पत्थरों की भयंकर बौछार ने उसका शरीर छिन्न-भिन्न कर दिया और बगल से घुसे हुए एक बाण ने उसके यकृत् को छेद दिया। (१७६३)

तीन क़दम हटकर वह अचानक धरती को कँपाता हुआ गिर पड़ा—साथ ही, बहुत दिनों से बढ़ता हुआ शत्रुकंपन भी हट गया। (१७६४)

उच्चवंशीय पुरुषों के साथ मृत भिक्षाचर उस प्रफुल्लतरु पर्वत के समान दीप्त था जिस पर बिजली गिरी हो। (१७६७)

विशाल राजमंडली में था हर्ष का यह वंशज—भिक्षु को तिरस्कार नहीं, बल्कि उच्चतम सम्मान का पद मिला। (१७६८)

भाग्य हमेशा उसके विरुद्ध रहा, फिर भी अंत में उसके द्वारा आराधित हो गया और, सही में, अपनी हार मान गया। (१७६९)

विशाल समृद्धि वाले पूर्ववर्ती राजाओं के सामने वह बेचारा कौन था। फिर भी, उसके अंतिम वीरकर्मों के कारण उसकी तुलना में वे कुछ भी नहीं थे। (१७७०)

उसकी आँखों का कंपन, भौहों की चपलता और ओठों की मुस्कान कई नाड़ियों तक कम नहीं हुई, मानो कि सिर अभी जिंदा हो। (१७७७)

उसका एक भाग अप्सराओं की संगति में स्वर्ग पहुँच गया; जबकि शरीर, पृथ्वी पर स्थित दूसरा भाग, धरती व जल को शीतल जानकर अग्नि में प्रविष्ट हो गया। (१७७८)

इसके पूर्व राजा भिक्षाचर; अपने दलबदलू सामंतों, मंत्रियों और सैनिकों के द्वारा छोड़ दिए जाने के बावजूद; समय बिताने के लिए पासे खेल रहा था और 'संघर्ष के लिए उत्सुक तथा वधिकों के द्वारा देर लगाने के कारण अधीर' था। इस बहादुर योद्धा का, जिसे यह मालूम था कि वह बाजी हार गया है, एक स्मरणीय लेखनीचित्र कल्हण ने खींचा है :

> उसके काले बाल लंबी चिंताओं के कारण विरल पड़ गए थे; उसके सैनिक वस्त्रों का छोर उज्ज्वल त्रिकोण-सा उड़ रहा था मानो उसका फहराता झंडा हो; गालों पर झूलने वाले उसके मोतियों के लोलक की चमक से और उसकी गर्वीली मुस्कान समान चंदन-लेप के सौंदर्य से वह ऐसा लगता था मानो कि अपने विस्मयोत्पादक जीवन के अंत में उसने पैरों की ठोकर मारकर पराजय को जीत लिया है; उसकी तलवार, आँखें और गेरुए रंग का उसका अधोवस्त्र आग के समान दमक रहा था; भींचे हुए अधरोष्ठ के कंपनशील कोणों सहित वह उस दुर्दम्य सिंह के समान लग रहा था जिसके कंधों से घनी अयाल फैली हो; द्रुत, शालीन व स्थिर क़दमों से युक्त जिसकी चाल, उसके नेत्रों की चपलता, इच्छा और पदों के अनुरूप थी और इस कारण वह मानो साकार ठीक क़द था; सम्मान को अपना सौभाग्य समझने वालों के लिए वह आत्म-विश्वास का आभूषण और अनंत, निरंतर स्वाभिमान था। इस प्रकार भिक्षु को निरखने वाले सभी लोगों ने उसे आगामी पतन से बेपरवाह, अपने दुश्मनों से जूझते क़दम बढ़ाते हुए देखा। (१७४४-१७५०)

११२१ ई० में कश्मीर की राजगद्दी फिर से पाकर सुस्सल ने 'अपने प्रतिद्वंद्वियों से अतिरस्कृत अचानक राजधानी में आगमन किया' (तरंग ८.४९७)। विजयी के रूप में उसके प्रवेश का वीररसपूर्ण चित्रण इस प्रकार है :

> काल के समान क्रोध से उबलते हुए, तेज धूप से जले हुए शरीरवाला, लंबी दाढ़ी से ढके हुए चेहरे वाला, क्रोध से भौंहें नचाने वाला सुस्सल आँखों को तरेरता हुआ श्रीनगर के मार्गों और बाजारों में सार्वजनिक रूप से सम्मुख आने वाले अश्वारोही-प्रमुख विश्वासघाती सैनिकों को धमका रहा था, उन्हें और दूसरे हारे हुओं को भला-बुरा कह रहा था। जिन्होंने पहले उसे कष्ट दिया था और अब उसे आशीर्वाद देकर पुष्पवर्षा कर रहे थे उन नागरिक-वृंदों की ओर वह घृणा की दृष्टि फेंक रहा था। अपने कंधों के पीछे उसने अपना कवच डाल लिया था जिसे उसने लापरवाही से धारण किया था। शिरस्त्राण के नीचे से निकले हुए उसके बाल धूल से भूरे थे, इसी प्रकार उसकी बरौनियाँ भी। तलवारें हाथ में लिए हुए अश्वारोहियों की सटी-सटी पंक्तियों के बीच में उछलते हुए घोड़े पर सवार उसकी तलवार म्यान में

थी। जब विजय-घोष से आकाश गूँज रहा था और नगाड़ों की आवाज़ के साथ उसके सैनिक खुशी से झूम रहे थे, तब सुस्सल ने श्रीनगर में प्रवेश किया। (६४७-६५३)

कल्हण एक दूसरे प्रकार की वीरता की भी प्रशंसा करते हैं—ललितादित्य की आज्ञा से मारे गए गौड़ राजा के स्वामिभक्त 'गौड वीरों की'। जैसाकि कल्हण चतुर्थ तरंग में बतलाते हैं, राजा के ये अनुयायी 'एकत्र हुए और भगवान् के मंदिर को घेरकर खड़े हो गए जो प्रतिभू थे' तथा पुरोहितों ने उन्हें रोका :

वीरोन्माद से उन्मत्त होकर उन्होंने रमास्वामी की चाँदी की मूर्ति, उसे परिहासकेशव की समझकर, उठा ली और चूर-चूर कर डाला। (३२७)

चूर-चूर करके उसे चारों दिशाओं में बिखेर दिया, जब कि श्रीनगर से आने वाले सैनिक उन्हें क़दम-क़दम पर मार रहे थे। (३२८)

खून से सने हुए वे श्याम लोग मरकर ज़मीन पर पड़े हुए थे मानो रक्त द्रव से युक्त सुरमे की पहाड़ी के पत्थर हों। (३२९)

स्वामी के प्रति उनकी असाधारण भक्ति उनके खून के फ़ुहारों से उज्ज्वल हो गई और वसुंधरा धन्य हो गई। (३३०)

अपने स्वामी की हत्या का बदला लेने के लिए सुदूर बंगाल से कश्मीर आने वाले इन स्वामीभक्त अनुयायियों के वीरतापूर्ण बलिदान के विषय में कल्हण की टिप्पणी एक लंबे श्लोक में है जो समुचित रूपकालंकार से युक्त है :

हीरे के कारण वज्र-संकट दूर हो जाता है, माणिक्य से समृद्धि मिलती है, मरकत से सभी प्रकार की विष बाधा दूर होती है, इस प्रकार प्रत्येक रत्न अपनी गुप्त शक्ति से अपना प्रभाव बतलाता है; पर, दूसरी ओर, अतुलनीय महानता से युक्त रत्न-तुल्य पुरुषों के लिए क्या प्राप्त करना कठिन है? (३३१)

'एकाएक आ जाने वाली विपत्ति दुःख उत्पन्न कर देती है, किंतु जब कोई विपत्तियों से घिरा हुआ हो तब उसे कुछ प्रतीत नहीं होता; पानी में डूबे हुए को पानी उतना ठंडा नहीं लगता जितना कि हाथ पर डालने से' यह है राजा सुस्सल के विषय में एक गंभीर टिप्पणी (८.१०९७) जो युद्धों के बीच में भी शांत रहता है। इसके पहले का पद्य (१०९५) 'विभिन्न संग्रामों में राजा स्वयं निरुद्विग्न घूमता था जिस प्रकार उत्सव में ब्राह्मण गृहस्थ एक कमरे से दूसरे कमरे में जाता है' आधुनिक समय में भी किसी भी परेशान राज्याध्यक्ष के लिए एक प्रत्यक्ष सीख है।

इतिहासकार के रूप में कल्हण

कल्हण उन ब्राह्मण पंडितों या कवियों की श्रेणी में नहीं थे जिन्होंने ग़रीबी या महत्त्वाकांक्षा से मजबूर होकर अपनी प्रतिभा घमंडी राजाओं के पैरों में रख दी थी। रीति या साहित्यिक परंपरा का अनुसरण कर, भारतीय लेखकों ने, विशेषत: दरबारी कवियों ने, अपनी राजकीय संरक्षकों पर स्तुति या चाटूक्तियों की वर्षा की है; इस विषय में राजतरंगिणी का प्रमाण नकारात्मक है। न ही, फिरदौसी के शाहनामा सदृश, कल्हण की राजतरंगिणी प्राचीन आख्यानों व पौराणिक कथाओं का एक संग्रह मात्र है।

इतिहासकार की भूमिका के विषय में कल्हण कहते हैं, "केवल वही गुणवान् व्यक्ति प्रशंसनीय है जिसकी भाषा में अतीत की घटनाओं का वर्णन करते समय, न्यायाधीश के समान, न तो पक्षपात है और न पूर्वग्रह।" इसी मानदंड पर चलते हुए, इतिहासकार के रूप में कल्हण ने एक पक्षपातरहित पुरालेखक का सिद्धांत अपनाया है।

"तथ्य पवित्र हैं", मैंचेस्टर-गार्जियन-कीर्ति के सी॰ पी॰ स्कॉट ने कहा था, जब, स्पष्टत:, वे पत्रकारिता के विषय में सोच रहे थे। पत्रकारिता, अपने सर्वोत्तम रूप में, वर्तमान इतिहास है; किंतु (उपर्युक्त) सूक्ति का इतिहास से और अधिक गहरा संबंध है। कल्हण का स्वयं का कथन तथ्यों के प्रति उनके सम्मान को सूचित करता है, "केवल वही सद्गुणी कवि प्रशंसनीय है, जो प्रेम या घृणा से अछूता रहकर, तथ्यों को प्रकट करने में अपनी भाषा पर भी अंकुश रखता है।"

प्राय: २३३३ वर्ष पुराने इतिहास की उपलब्ध सामग्री के विषय में वे क्या सोचते थे, यह कल्हण के ही प्रास्ताविक पद्यों में सर्वोत्तम रूप से व्यक्त है, जिनका रणजित् सीताराम पंडित ने इस प्रकार गद्यानुवाद किया है :

'राजकीय पुरालेखों से युक्त प्राचीनतम विस्तृत कृतियाँ सुव्रत की रचना के फलस्वरूप तिरोहित हो गईं जिन्होंने अपनी रचना में उनका सारांश दिया जिससे कि उनकी विषयवस्तु याद रहे। सुव्रत का काव्य यद्यपि सुप्रसिद्ध है,

तथापि पांडित्यप्रदर्शन के कारण समझने में कठिन है।

'आश्चर्यजनक रूप से ध्यान न देने के कारण इसमें क्षेमेंद्र की कृति नृपावली का एक भी भाग नहीं है जो ग़लतियों से मुक्त है, यद्यपि उसमें काव्यगुण विद्यमान हैं। किंतु दो बातों के कारण वे सुने जाने के अधिकारी हैं—एक, उन्होंने कश्मीर के प्राचीन इतिहास से संबंधित अनेक कृतियों का परीक्षण किया और उनकी तुलना की; दूसरे, उन्होंने पूर्ववर्ती राजाओं के शिलालेख, वंशवृक्ष और प्रसिद्ध व्यक्तियों की स्मरणिकाओं का उपयोग किया।

'मैंने पूर्ववर्ती विद्वानों की ग्यारह कृतियों का परीक्षण किया है जिनमें राजाओं के पुरालेख हैं, साथ ही नीलमत पुराण का भी।

'पूर्ववर्ती राजाओं के राज्याभिषेक के समय की गई घोषणाएँ, जिनसे उन राजाओं का संबंध था उन पुरातन विषयों के शिलालेख, वंशवृक्षों से युक्त प्रशस्तिपत्र और प्रथित व्यक्तियों की स्मरणिकाएँ जाँच ली गई हैं। मैंने ग़लतियों से होने वाली गड़बड़ियाँ दूर कर दी हैं।'

इस प्रकार कल्हण ने पूर्ववर्ती पुरालेखों का उल्लेख और समीक्षण किया है। कश्मीर के राजाओं के इतिहास से युक्त पुरानी लंबी रचनाएँ पूरी-पूरी अस्तित्व में नहीं थीं। कल्हण इस हानि का कुछ दोष सुव्रत की रचना को देते हैं जिन्होंने एक पुस्तिका में इन पूर्ववर्ती पुरालेखों का संक्षेप दिया था। यदि कश्मीर के प्राचीन राजाओं के विषय में ग्यारह या उससे भी ज़्यादा रचनाएँ लिखी गई थीं, तो राजतरंगिणी की रचना का हेतु क्या था? इसका उत्तर हमें कल्हण से मिलता है कि गोणंद ३ के समय से कोई भी अखंड और संपूर्ण पुरालेख नहीं था, और वे 'अनेक प्रकार से जहाँ बीती हुई घटनाओं के आख्यान टूटे हुए थे वहाँ संबद्ध विवरण' देना चाहते थे। यह सुविदित है कि भारत में किस प्रकार संक्षेप किए जाने से किसी भी विषय की पूर्ववर्ती रचनाएँ विलुप्त हो जाती थीं। राजा और सामान्य नागरिक दोनों के लिए कल्हण इस काव्याख्यान की अनेक घटनाओं की सीख इंगित करना चाहते थे; 'अतः रस के स्वच्छ निर्झर से रमणीय यह राजतरंगिणी आपके शुक्ति-सदृश्य कर्णों से निपीत हो'।

राजतरंगिणी में संस्कृत पद्यों के आठ सर्गों (तरंगों) में प्राचीनकाल से लेकर कल्हण के समय तक कश्मीर पर शासन करने वाले विभिन्न राजवंशों का इतिहास है। पहली तीन तरंगों की घटनाओं के आख्यानात्मक स्वरूप को छोड़कर—वस्तुतः कल्हण प्रामाणिक रूप से कश्मीर की प्राचीन परंपराओं का उल्लेख कर रहे थे—कल्हण की रचना १८३५ ई० में प्रकाशित होने के बाद से ही समय तथा ऐतिहासिक समीक्षा की कसौटी पर खरी उतरी है। कल्हण के समय की ऐतिहासिक

घटनाओं का विशद विवरण मुख्य रूप से समकालीन प्रमुख व्यक्तियों से उनके व्यक्तिगत संपर्कों पर आधारित था। यह तथ्य आठवीं तरंग के लंबे वर्णन को इतिहास के विद्यार्थी के लिए मूल्यवान् बना देता है।

पुरातत्त्वज्ञ होने के कारण, कल्हण ने, राजकीय दानपत्रों व घोषणापत्रों सहित, ऐसे मूल दस्तावेजों का भी उपयोग किया जो कश्मीर में उपलब्ध थे। मंदिरों के प्रस्तर-लेखों से उन्होंने मंदिरों की स्थापना के विषय में और विशिष्ट पवित्र प्रतिमाओं के मूल के विषय में ठीक-ठीक विवरण प्राप्त किए।

प्रसिद्ध इतिहासकार आर० सी० मजूमदार[1] ऐतिहासिक गवेषणा की आधुनिक समीक्षात्मक पद्धति की पूर्वकल्पना करने के लिए कल्हण की प्रशंसा करते हैं, 'प्राचीन भारतीय साहित्य में यही एक कृति है जिसे हम वास्तविक अर्थ में ऐतिहासिक ग्रंथ मान सकते हैं। लेखक ने न केवल विद्यमान पुरालेखों और दूसरे स्रोतों से अपनी सामग्री एकत्र करने का कष्ट उठाया है; अपितु अपनी रचना के प्रारंभ में, इतिहास-लेखन के कुछ सामान्य सिद्धांत भी प्रस्तुत किए हैं जो उनके समय को देखते हुए काफ़ी अग्रगामी हैं। सचमुच इन्हें, काफ़ी सीमा तक, ऐतिहासिक गवेषणा की समीक्षात्मक पद्धति की पूर्वकल्पना मान सकते हैं जो कि १९वीं सदी तक पूर्ण विकसित नहीं हुई थी।

राजतरंगिणी के कुछ भाग में चाहे जो दोष हों, यह एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कृति है; निश्चय ही कश्मीर व शेष भारत के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण। हम स्टीन का भी एक उद्धरण राजतरंगिणी के उनके अनुवाद की प्रस्तावना से दे सकते हैं, 'भारतीय इतिहास के लिए कल्हण की राजतरंगिणी में अभिरुचि सामान्यत: इस बात से है कि यह संस्कृत प्रबंध के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है जो मध्ययुगीन यूरोप और मुस्लिम पूर्व के पुरालेखों से अत्यंत निकट है। कल्हण के वर्णन से युक्त उत्तरवर्ती कश्मीरी पुरालेखों सहित यह इस वर्ग का एकाकी उपलब्ध नमूना है—कल्हण कहीं भी इस कृति के स्वरूप और आयोजन की मौलिकता अपने ऊपर नहीं लेते। इसके विपरीत, कश्मीर के राजाओं के इतिहास से संबंधित विभिन्न पूर्ववर्ती प्रबंधों का वे उल्लेख करते हैं जिनका उन्होंने उपयोग किया है। किंतु इन प्राचीन कृतियों में से कोई भी हमें नहीं मिली है। न ही भारत के किसी भी भाग में संस्कृत साहित्य ने राजतरंगिणी-सदृश पुरालेखों के अवशेष सुरक्षित रखे हैं, यद्यपि उनके पूर्व-अस्तित्व के विषय में विभिन्न दिशाओं से सूचनाएँ प्रकाश में आई हैं।'

---

१. मजूमदार आर० सी०, सं०, दि वैदिक एज, पृ० ४९

कालगणना की पद्धति

कालगणना की दृष्टि से राजतरंगिणी में एक गंभीर दोष है। पहली तीन तरंगों में, यद्यपि अलग-अलग शासनों की अवधि का उल्लेख है, तथापि ठीक-ठीक तिथियाँ नहीं दी गई। जब कल्हण प्रत्येक शासक के संभावित शासनकाल के वर्षों को जोड़ते हैं, तब संख्याएँ बराबर नहीं मिलतीं।

तरंग ४ के पद्य ७०३ से प्रारंभ करके—चिपत-जयापीड (८१३ ई०) की मृत्यु के बाद से कल्हण ठीक-ठीक तिथियाँ देते हैं। ये लौकिक संवत में व्यक्त हैं जो कश्मीर में प्राचीन काल से ही परंपरागत था। (लौकिक संवत् को ई० सन् में ठीक-ठीक बदला जा सकता है) राजतरंगिणी के अपने अनुवाद के 'आमंत्रण' में रणजित् सीताराम पंडित लिखते हैं, "सबसे पहली तिथि लौकिक संवत् (८१३-८२४ ई०)का वर्ष ३८८६ है। इसमें सन्देह नहीं कि इस तिथि के बाद का कल्हण का इतिहास प्रामाणिक और यथावत् अभिलेख है, तथा प्राचीन काल की दोषपूर्ण कालगणना पूर्ववर्ती पुरालेखकों की ग़लतियों के कारण है।"

पाँचवीं तरंग में, उत्पल वंश की शुरुआत के बाद प्रत्येक शासन का प्रारंभ और अंत बतलाने के लिए वर्ष, माह और दिन का कथन किया गया है। इन तिथियों को हम सब मिलाकर, विश्वसनीय मान सकते हैं; संभवतः इन्हें किसी समकालीन अभिलेख से लिखा गया है। किंतु स्वतंत्र विवरणों से इनकी यथार्थता की जाँच करने का साधन इतिहासकारों के पास नहीं है।

१८वीं सदी ई० के उत्तरार्द्ध में कल्हण के पहुँचने तक राजाओं के उत्तराधिकार के तिथिक्रम का ठीक-ठीक संकेत नहीं मिलता। जब कल्हण अपने समय के बारे में लिखते हैं, तब भी ठीक-ठीक तिथियाँ नदारद हैं। जिन घटनाओं को कल्हण महत्त्वपूर्ण समझते हैं और विस्तार से वर्णन करते हैं, उनके विषय में भी कालावयव तिरोहित है। कभी-कभी वे केवल माह का ही उल्लेख करते हैं; वर्ष का अनुमान पाठक लगाता रहे।

कश्मीर की भूरचना से पूरी तरह परिचित होने के कारण, कल्हण के

स्थानीय उल्लेख यथावत् और स्पष्ट हैं। "यह मुख्यतः कल्हण की ही योग्यता है कि हम कश्मीर की प्राचीन भूरचना को अधिक विस्तार से पुनःस्थापित कर सकते हैं, तत्सम किसी दूसरे भारतीय क्षेत्र की अपेक्षा" (स्टीन) इस प्रकार राजतरंगिणी के अध्ययन और कश्मीर घाटी के प्राचीन भूगोल के बीच निकट संबंध स्थापित हो जाता है।

वंशावलियों की ओर ध्यान देने में भी कल्हण अतिसावधान हैं। स्पष्टतः अपने-अपने समय की घटनाओं को सर्वाधिक प्रभावित करने वाले प्रत्येक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के वंश का मूल बतलाने के महत्त्व के प्रति वे जागरूक थे। इस बात ने अंतिम दो तरंगों की जटिल घटनाओं को समझना काफ़ी सरल कर दिया है। अधिक महत्त्वपूर्ण महापुरुषों के विषय में नियमित वंशवृक्ष दिए गए हैं।

भारत के विभिन्न भागों में एक के बाद दूसरे राज्यों को जीतनेवाले कर्कोट वंश के यशस्वी सम्राट् ललितादित्य की वंशावली मिलती है। यद्यपि ललितादित्य के शासनकाल की अवधि (७२४-७६१ ई०) जैसी कल्हण ने दी है वैसी ही सही मान ली गई है, कुछ विद्वान् तिथि के ठीक होने के विषय में आश्वस्त नहीं हैं। वास्तव में, तिथि कल्हण द्वारा नहीं दी गई है और गणना के फलस्वरूप निश्चित की गई है। गणना में एक दोष है जैसा कि उस सामग्री से स्पष्ट है जिस पर कालगणना अनुमानित है। यह सामग्री है--कल्हण की स्वयं की तिथि शाके १०७० (११४८ ई०); गोणंद ३ की तिथि, जिसने शाके १०७० से २३३० वर्ष पूर्व राज्य किया; और अंततः, इन दोनों तिथियों के बीच शासन करने वाले राजाओं के नाम और उनके शासन-काल। कल्हण की स्वयं की तिथि (अर्थात् राजतरंगिणी लिखने की तिथि) सही मानी जा सकती है; किंतु गोणंद ३ और कल्हण के बीच के समय को तथा ललितादित्य के समय तक के राजाओं की शासनावधि को उतना ही सही नहीं माना जा सकता।

ललितादित्य और दूसरे कर्कोटों के कालक्रम को, काम चलाने के लिए स्वीकृत कर लिया गया है; यद्यपि तंग वंश के चीनी वृत्तान्तों की प्रविष्टियाँ इससे प्रतिकूल हैं। कम-से-कम २५ वर्षों का अंतर है और स्टीन ने यह निष्कर्ष निकाला कि इस वंश के शासकों को इतने ही वर्षों से आगे बढ़ा देना चाहिए। इसमें एक दूसरा दोष आ जाता है। कर्कोट वंश का शासन ८८० ई० तक आगे बढ़ जायेगा जिस समय निश्चित रूप से कश्मीर में अवन्तिवर्मा का शासन था। हमारे पास एक ही हल रह जाता है कि कल्हण ने कर्कोट वंश के कुछ राजाओं का शासनकाल अधिक लंबा बतलाया है---इसीलिए यह जटिल समस्या है।

फिर भी इतिहासकारों में यह मतैक्य है कि राजतरंगिणी में इतिहास का कर्कोट-पूर्व भाग कुछ अंशों में विश्वसनीय नहीं है। ऐसे शासनकाल हैं जिनकी अवधि (यथा, रणादित्य की, ३०० वर्ष पर्यंत) स्पष्टतः अस्वीकार्य है। आश्चर्य-

गयी घटनाओं का वर्णन है जो, संक्षेप में कहें तो, असंभव है। किंतु, जैसा कि रणजित् सीताराम पंडित[1] कहते हैं, "अभी तक ऐसा कोई भी शिलालेख, सिक्का, पुरालेख या किसी प्रकार का स्वतंत्र साक्ष्य नहीं मिला है जिसने निःसंशय यह सिद्ध कर दिया है कि कल्हण के आख्यान का कोई भी भाग, अनेक संभावित दोषों से युक्त होने पर भी, गलत है...न ही यह बतलाने वाला ऐसा कोई प्रमाण प्रस्तुत किया गया है कि ये त्रुटियाँ पूर्ववर्ती तत्काल-उपलब्ध अभिलेखों और दूसरी सामग्री के कल्हण द्वारा प्रयुक्त किए जाने के फलस्वरूप हैं।"

अतः यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि सभी राजाओं की तिथियों को बिगाड़ना नहीं चाहिए जब कि हम यह निश्चित रूप से जानते हैं कि कल्हण अपने पूर्ववर्ती लेखकों के पुरालेखों का सविवेक उपयोग कर रहे थे। यह संभव है कि जिनके विषय में विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है ऐसे एक या अनेक अल्पज्ञात राजाओं की तिथियों के संबंध में कल्हण ने स्वयं अनुमान या हिसाब लगाया। स्वतंत्र साक्ष्य ने यह स्थापित कर दिया है कि बाद की तरंगों—विशेषतः पाँचवीं, छठवीं, सातवीं और आठवीं—की तिथियाँ सही सिद्ध हुई हैं; जबकि पूर्ववर्ती राजाओं के शासन के संबंध में कल्हण कश्मीर की प्राचीन परंपराओं का प्रामाणिकता से अनुसरण कर रहे थे, पूर्ववर्ती पुरालेखों और तात्कालिक शिलालेखों व मुद्राओं की मदद लेते हुए। उनका यह कथन कि गोणंदों के बाद ५९६ ई० में कर्कोटों की शक्ति बढ़ी ह्यून सांग के द्वारा भी अनुमोदित है (जो ६३१ ई० में कश्मीर आया था जैसा कि कनिंघम ने स्थापित किया है) जिसके अनुसार, क़ई सदियों तक के गोणंदों के शासन के बाद, घाटी में कि-लि-टो का (जिस नाम से चीनी लोग कर्कोटों को जानते थे) शासन था; और जो विशेषरूप से यह कहता है कि राजा का बौद्धमत में ज्यादा विश्वास नहीं था।

अतः रणजित् सीताराम पंडित ने इस वाद में हिस्सा लिया, प्रोफ़ेसर बूहलर के साथ जिनका मत था कि कल्हण की पांडुलिपि संतोषजनक दशा में नहीं थी। पंडित[2] की टिप्पणी कल्हण की कालगणना के वाद का फ़ैसला करती है और उद्धरण योग्य है "कम से कम, जब तक उस सर्वस्वीकार्य मूल्यवान् कृति का पाठ—किसी भी संकेत से अभी तक प्रकाश में आया हुआ एकाकी ऐतिहासिक संकलन—योग्य धैर्यवान हाथों के द्वारा सावधानी से संपादित करके अपनी मूल शुद्धता में नहीं पहुँचाया जाता; तब तक यह आशा तर्कसंगत होगी कि, उसके विषय में कतिपय विद्वानों के द्वारा कुछ लिखे जाने के बावजूद, हम उसके ऐतिहासिक मूल्य के बारे में अपना निर्णय निलंबित कर दें (उसके प्रारंभिक भागों के बारे में भी);

१. पंडित रणजित् सीताराम अनु; राजतरंगिणी, साहित्य अकादेमी, १९६८ संस्करण, परिशिष्ट क. पृ० ७२०-७२१

२. तत्रैव।

एवं, स्वतंत्र साक्ष्य के अभाव में, यद्यपि हम कुछ अंशों में उसकी यथार्थता स्वीकार करने में हिचकिचाएँ, यहाँ तक कि केवल पौराणिक कहकर कथाओं की उपेक्षा कर दें, तथापि जो कुछ उसमें (यहाँ तक कि उसके प्रारम्भिक भागों में भी) कहा गया है उसे अस्वीकार करने के लिए हमें तब तक तैयार नहीं होना चाहिए जब तक स्वतंत्र साक्ष्य यह सिद्ध कर देता है कि उसके अंदर सब कुछ ग़लत है।" कल्हण ने स्वयं निःसंदिग्ध संकेत दिया है कि जैसे-जैसे पुराकाल में पीछे जाते हैं वैसे-वैसे कहानी प्रायः पुराख्यान हो जाती है; किंतु उनके लिए जो आधुनिक काल था उसमें वह वास्तविक ऐतिहासिक रूप धारण कर लेती है।

वर्णनकर्ता के रूप में कल्हण

इतिहास दो तत्वों से उत्पन्न होता है—अतीत या उसका अवशेष (स्थूल या अस्थूल), और (लिखने के समय) कल्पनामय कौशल उसके पुनर्निर्माण हेतु। इतिहासकार को उपलब्ध स्रोत उसके लिए आवश्यक रूप से बाह्य होते हैं। उनमें वह न कुछ जोड़ सकता है, न बदल सकता है, बनावट या जालसाजी किये बिना। राजतरंगिणी की अपनी प्रस्तावना में, जहाँ से हम उनके स्रोतों के बारे में जानते हैं, कल्हण उनकी सापेक्ष गुणवत्ता के विषय में अपनी धारणा अभिव्यक्त नहीं करते। कल्हण के द्वारा उपयोग किये गए कोई भी पूर्ववर्ती पुरालेख तुलना के लिए उपलब्ध नहीं हैं। वर्णनकर्ता के रूप में कल्हण का मूल्यांकन करने हेतु और उनकी इतिहास विषयक धारणा के मूल्य-निर्धारण हेतु हमें आंतरिक साक्ष्य पर निर्भर रहना होगा।

तत्कालीन परंपरागत आख्यानों और अचरज-भरी कहानियों का वर्णन जिस प्रकार किया गया है उससे मालूम होता है कि कल्हण उस सहज विश्वास में भागीदार थे जिससे इनकी उत्पत्ति हुई थी। "स्पष्ट असंभावनाएँ, अतिशयोक्तियाँ और अंधविश्वास जिन्हें लोक-परंपरा के ऐतिहासिक संस्मरणों में सम्मिश्र हो जाने की हम आशा कर सकते हैं वे सब किसी भी शंका या समीक्षात्मक संदेह के बिना पुनरुक्त हैं।" स्टीन का यह निर्धारण सही हो सकता है; किंतु कल्हण की इस बात में तारीफ करनी चाहिए कि वे उन संशयालुओं का भी उल्लेख करते हैं जिनके मन में मेववाहन और दूसरे प्राचीन राजाओं (७.११३७) के अद्भुत कार्यों के लिए संदेह भरा हुआ था। यद्यपि कल्हण स्वयं को श्रद्धालुओं से अलग प्रदर्शित करते हैं, फिर भी, काफ़ी कुछ, ऐतिहासिकता की उनकी धारणा उस समीक्षात्मक वृत्ति को बहिर्गत कर देती है जो आधुनिक काल में इतिहासकार के साथ संबद्ध है। जैसा कि पश्चिमी लेखकों ने सामान्यतः इंगित किया है, भारतीय मस्तिष्क पौराणिक आख्यान-परंपराओं और इतिहास के बीच रेखा नहीं खींचता। वास्तविक इतिहास की परंपरागत भारतीय धारणा विशिष्ट रूप से

प्राच्य थी। मध्ययुगीन-भारतीय इतिहासकार एक क्षण के लिए अपना अविश्वास निलंबित कर लेता है जब वह पौराणिक कथाओं और अन्य वीरयुगीन आख्यानों की जानकारी देता है; उसके लिए ये उतने ही सच हैं जितनी कि निकट अतीत की घटनाएँ। फलस्वरूप भारतवर्ष में इतिहास, पश्चिमी अर्थ में, राजनीतिक इतिहास के रूप में नहीं लिखा गया; किंतु धार्मिक कल्पना एवं काव्यगत यथार्थ और मिथ्या से मिलकर बना। आख्यान और परंपरा को ऐतिहासिक सत्य से अलग करने के लिए शायद ही कोई कोशिश की गई। अतीत के अचरजों और पुराख्यानों के प्रति कल्हण के सहज विश्वास का इससे स्पष्टीकरण हो जाता है—चाहे वे प्रारंभिक गोणंद राजाओं का महाभारत युद्ध से संदिग्ध संबंध बतलाएँ अथवा ललितादित्य या जयापीड के आख्यानात्मक वीरकर्मों का चित्रवत् विशद वर्णन करें, जिनका शासनकाल उनके समय के अपेक्षाकृत निकट था।

कश्मीर की हिमवन्त घाटी के ऐतिहासिक पृथक्करण पर भी अतिरिक्त विचार करना पड़ेगा। विशाल पर्वत-प्राचीरों ने न केवल विदेशी आक्रमण से निरंतर छुटकारा दिलाया; अपितु विशिष्ट ऐतिहासिक व्यक्तित्व को भी बनाए रखा। कश्मीर के इतिहास का सुस्पष्ट स्थानीय स्वरूप कल्हण की राजतरंगिणी में यथावत् प्रतिबिंबित है। प्रकृति-प्रदत्त सुनिश्चित सीमाओं से युक्त छोटा पहाड़ी प्रदेश होने के कारण, भूमि रचना, मनुष्यों और तौर-तरीक़ों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना कल्हण के लिए अपेक्षाकृत सरल था जिससे उसका ग्रंथ और अधिक मूल्यवान् हो गया है—संकीर्ण सीमाओं से उत्पन्न दोषों को छोड़कर।

पुरालेखक के रूप में, कल्हण ने निर्णय की स्वतंत्रता क़ायम रखी। जिन राजाओं के अधीन उन्होंने लिखा उनकी भी गलतियाँ और कमजोरियाँ बतलाने में वे हिचकिचाए नहीं। मनुष्यों के दिलों की—उनके साधन और साध्यों की—खोजपूर्ण छानबीन उन्हें एक आधुनिक के रूप में प्रस्तुत करती है। राजा हर्ष के शोकमय अंत के मर्मस्पर्शी वर्णन में, जहाँ रस ही सर्वोपरि प्रतीत होता है, कल्हण हमें नियति के न्याय को महसूस कराते हैं जिसने 'कश्मीरी इतिहास के नीरो' को अभिभूत कर लिया। ऐतिहासिक व्यक्ति, जैसे तुंग, सुस्सल और अनंत, अपने-अपने पृथक् व्यक्तित्व के साथ प्रस्तुत किए गए हैं, न कि सामान्य प्रकार से। इतिहास के नाटक के अनेक गौण पात्रों के सजीव पार्श्व-चित्र प्रस्तुत हैं। काव्यों और ऐतिहासिक चरितों में भरे पड़े निर्जीव एकीकरणों की तुलना में ये यथार्थवादी चित्रण स्मरणीय तीक्ष्ण और स्थायी विरोधाभास प्रस्तुत करते हैं।

इन और दूसरे चरित्रों को सत्याभासित करने वाला ऐतिहासिक सत्यता का गुण राजतरंगिणी के दूसरे भागों की घटनाओं के वर्णन में भी भिदा हुआ है। 'वास्तविक इतिहास' (या 'महत्त्वपूर्ण इतिहास') को मिलाकर आधुनिक इतिहासकार के दृष्टिकोण से, राजतरंगिणी के उत्तरवर्त्ती भागों में कल्हण द्वारा

विशिष्ट घटनाओं का अननुपात लंबा वर्णन किये जाने में समालोचक पाठक दोष ढूँढ़ सकता है किन्तु कल्हण के दृष्टिकोण से ये लम्बे वर्णन राजतरंगिणी के ऐतिहासिक अंतर्भाग के परिपूरक थे। कभी-कभी ऐसा लगता है कि, साक्षियों के विवरणों के द्वारा, कल्हण घटनाओं के निकट संपर्क में थे; सुस्सल की हत्या, रानी सूर्यमती का सती होना, कलश की मृत्यु जैसी करुणाजनक घटनाओं का वर्णन करते समय। इसीलिए विस्तार की अधिकता है जिससे ऐसे प्रसंगों में विशिष्टता आती है। स्टीन के शब्दों में "यदि राजा हर्ष का अंतिम संघर्ष, उसका पलायन और अंत, भिक्षाचर की शोकमयी मृत्यु तथा लोहार का पतन जैसी घटनाओं के विवरण हमें सच लगते हैं तो इसका कारण है उनके वर्णनों में यथावत् विस्तार का आधिक्य।" काव्य-विशिष्ट अतिशयोक्ति और अलंकारों से विरहित वर्णनों की प्रभावोत्पादक सरलता उनकी प्रामाणिकता को बढ़ाती है। रायायण या महाभारत में वर्णित समरूप उदाहरणों का उल्लेख करके कल्हण कश्मीरी इतिहास के महत्त्वपूर्ण प्रसंगों पर जोर देते हैं। साथ ही प्रकृति की रहस्यमयी मोहकताओं से भरपूर कश्मीरी घाटी के ग्राम्यस्वर्ग के प्रति उनका प्रेम अनेक अंतःस्फूर्त पद्यों में प्रस्फुटित है। इससे भी अधिक, कल्हण हमें वह सब बतलाते हैं जो हम जानना चाहते हैं—उनके समकालीन स्त्री-पुरुष कैसे दिखते थे, वे क्या पहनते और खाते थे; उनके विश्वास क्या थे और शाश्वत यौन समस्या के लिए उनका हल क्या था। इस प्रकार हम किसी दूसरे प्राचीन भारतीय लेखक के मामले में कठिनाई से उपलब्ध अपेक्षाकृत अधिक यथार्थता से उन राजनीतिक और सामाजिक अवस्थाओं को समझ सकते हैं जिनमें कल्हण ने अपना जीवन बिताया।

कश्मीर का एक प्रमुख गुण—हास्यवृत्ति (और मानवीय कमजोरी की शीघ्र पकड़) कल्हण में भी काफी मात्रा में विद्यमान था।

उनके रेखाचित्रों में उनका कौशल सर्वाधिक दृष्टिगोचर है—विशेषतः उन निम्न नवधनाढ्यों के रेखाचित्रों में जो छलकपट द्वारा सामाजिक सीढ़ी पर चढ़े; वे इन रेखाचित्रों में हास्य का पुट देते हैं जो कभी-कभी अति मनोविनोद-पूर्ण हो जाता है। हास्यपूर्ण किंतु तीखे व्यंग्य द्वारा वे कश्मीरी सैनिकों की थोथी आत्म-श्लाघा और जन्मजात कायरता का भंडा फोड़ते हैं। वे हमें उन सेनाओं के विषय में बतलाते हैं जो दृढ़निश्चयी भयंकर शत्रु को देखकर; या उसके आने की अफ़वाह सुनकर ही, युद्धभूमि से भाग खड़ी होती हैं। हम ऐसी प्रतिस्पर्धी शक्तियों के विषय में पढ़ते हैं जो एक-दूसरे के भय से काँपती थीं। कल्हण अपने देशवासियों की 'बहादुरी' की तुलना उन 'राजपुत्रों' और मैदानी भाड़े के सैनिकों की वीरता से करते हैं जो, कल्हण के समय, स्पष्टतः राजाओं के प्रधान अवलंब थे। राजाओं और पुरोहितों, उनकी नैतिकता और कार्य करने के तरीक़ों, की निंदा करने वाले

अनेक परिहासपूर्ण चित्र हैं।

कल्हण उस पुरोहितवर्ग के प्रति अपनी घृणा को नहीं छिपाते जिसका अज्ञान उसके अभिमान के बराबर ही था; और राजकार्यों पर उसके घातक प्रभाव की कटु टीका भी करते हैं। हास्यपूर्ण वर्णनों में, कल्हण इन पुरोहितों की मिली-जुली आत्मश्लाघा और भीरुता का खुलकर मजाक़ उड़ाते हैं तथा उनकी पवित्र स्थिति के प्रति स्वल्प आदर प्रदर्शित करते हैं।

यद्यपि उपहासपूर्ण टीकाएँ लिखने में कल्हण प्रवीण हैं, वे ऐतिहासिक घटनाओं के वर्णनकर्ता के रूप में सर्वाधिक सफल हैं। राजा हर्ष की शोकमयी मृत्यु का वर्णन करते समय या राजा अनंत के दाहसंस्कार और उसकी रानी सूर्यमती के सती होने का विवरण देते समय वे काव्यकला के शिखर पर पहुँच जाते हैं। उनका वर्णन उस समय लौकिक नाट्य के मानदण्ड पर पहुँच जाता है जिस समय वे, विश्वासघाती सहायकों के द्वारा त्यागे गए, राजा हर्ष की उत्तरोत्तर बाधाओं के सामने असहायता का चित्रण करते हैं; षड्यंत्र का रहस्य खुलता है उसके अंतिम संघर्ष के विमोचक शौर्य के द्वारा। इसी प्रकार, वे करुणाजनक प्रसंग, जिनमें आहत ब्राह्मणों के दारुण शाप की जयापीड की मृत्यु में चरम परिणति होती है, प्रभावोत्पादक हैं; पदावली और रूपक की प्रत्यक्ष सरलता से नाटकीयता काफ़ी बढ़ गई है।

संपूर्ण भारत की विजय के महँगे युद्धों के बाद राजा जयापीड (तरंग ४) की अक्ल पर 'लालच का पर्दा' पड़ गया था एवं मंदिरों की जायदाद व फसल की समूची जब्ती के विरोध में ब्राह्मणों ने एकत्र 'अस्वीकृति में मौत चाही।' इस नाटकीय प्रसंग के कुछ प्रभावोत्पादक उद्धरण निम्नलिखित हैं जो कल्हण की सरलता के परिचायक हैं—

> ब्राह्मणों में कितना अद्भुत साहस था। दूसरों के परदेश चले जाने के बाद जो बचे वे अस्वीकृति में मौत माँगने से नहीं चूके। (६३२)
>
> "यदि एक दिन में ९९ ब्राह्मण मरें तो मुझे सूचना दी जाए", तब राजा ने कहा जिसकी क्रूरता असीम थी। (६३३)
>
> उस (ब्रह्मतेज के सागर इत्तिल नामक द्विज) से राजा ने हँसते हुए कहा, "विश्वामित्र आदि के क्रोध से हरिश्चंद्र आदि नष्ट हो गए। तुम्हारे क्रोध से क्या होगा?" (६५०)
>
> धरती पर हाथ पटकते हुए क्रुद्ध ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "मेरे क्रुद्ध होने पर ब्राह्मण का अभिशाप क्षणमात्र में ही तुम्हारे ऊपर क्यों नहीं गिरेगा?" (६५१)
>
> यह सुनकर घृणापूर्वक अट्टहास करते हुए राजा ने ब्राह्मण से कहा, "तो ब्राह्मण का अभिशाप गिरे, वह देर क्यों लगा रहा है?" (६५२)

"सचमुच वह गिरेगा, पापी," जैसे ही ब्राह्मण ने यह कहा वैसे ही राजा के शरीर पर एक सुनहला खंभा आकर लगा जो चंदवे से गिरा था। (६५३)

इससे उसके शरीर में एक घाव हो गया, जलन होने लगी, पीप पड़ गई और असंख्य कीड़े बिलबिलाने लगे जिन्हें चिमटी से निकालने की ज़रूरत पड़ी। (६५४)

कई रातों तक पीड़ा भोगकर, जो नरक के कष्टों की पूर्व-सूचना दे रही थी, जानेवाला जीवन उसे छोड़कर चला गया। (६५५)

निम्नलिखित पद्य में उपर्युक्त कथा की सीख सन्निहित है :

राजा और मत्स्य, जो क्रमशः धन और गँदले पानी की चाह में अपनी जगह छोड़ते हैं गलत राह पर चलते हैं; फलस्वरूप नियतिवश विपर्यय और मछुए क्रमशः उन्हें नरक और जाल में ललचाकर फँसा लेते हैं। (६५८)

जब ललितादित्य अपनी विजय-यात्रा पूरी करके कश्मीर वापिस नहीं आ सका तब उसने अपने मंत्री (तरंग ४) के लिए जो विख्यात नीतिकथन उपवर्णित किया उसे कल्हण ने इस प्रकार अलंकृत पद्यों में समाविष्ट किया है :

बार-बार ऐसी कार्रवाई की जाए जिससे गाँव के लोगों के पास उनकी सालाना ज़रूरतों से ज़्यादा, क्षेत्रफलानुसार, उनके और बैलों के खाने के लिए अनाज न रहे। (३४७)

क्योंकि यदि उनके पास ज़्यादा धन रहता है, तो वे एक साल में ही राजा के अधिकार को न मानने वाले भयानक डमार हो जाएँगे। (३४८)

जब गाँववालों के पास राजसी वस्त्र, स्त्रियाँ, कंबल, अनाज, आभूषण, घोड़े और घर हो जाते हैं; जब सावधानी से संरक्षणीय दुर्गों के प्रति मदवश राजा लापरवाह हो जाते हैं; जब वे अपने पदाधिकारियों के चरित्र की सराहना करना भूल जाते हैं; जब केवल एक ही जिले से सेना का व्यय वसूल किया जाता है; जब राजकीय अधिकारी एक-दूसरे से वैवाहिक संबंध करके अपनी एक बिरादरी बना लेते हैं; जब राजकीय मामलों में राजा अपने अधिकारियों जैसा ही दृष्टिकोण रखता है; तब यह बात निःसंदेह समझ लेनी चाहिए कि प्रजा का सौभाग्य उलट गया है। (३४९-५२)

अध्याय की समाप्ति पर, हम आनंद लें कल्हण की कुछ अर्थगंभीर सूक्तियों का (जिनकी सीख आज भी उतनी ही सच है जितनी उस समय थी) जिनसे स्थान-स्थान पर आख्यान अलंकृत है :

कैसा आश्चर्य है कि यश के निर्झर में अपने को स्वच्छ करके राजा लोग दुर्गुणों के द्वारा अपने को मलिन कर लेते हैं, जिस प्रकार नहाने के बाद हाथी अपने ऊपर धूल डालकर। (५.१६४)

विश्वसनीयता का त्याग कर देने वाला कौआ दूसरों के बच्चों को अपना समझ लेता है; दूध और पानी को अलग करने में निपुण हंस रिक्त मेघ के प्रति कंपित हो जाता है; जनता का अधीक्षण करके जिसकी बुद्धि तीक्ष्ण हो गई है वह राजा भी धूर्त के शब्दों को सच मान लेता है। सोचिए भाग्य की व्यवस्था जिसमें चतुराई और मूर्खता का सम्मिलन है। (६.२७५)

वीर सोचता है कि अपना लक्ष्य वीरता से ही प्राप्त करना चाहिए और कायर युक्ति से; नहीं तो इन दोनों में कोई अंतर ही नहीं रहेगा। (६.३६३)

आग के बिना वृक्षों की लकड़ी केवल बंदरों को ठंड और वर्षा से बचा सकती है; हवा केवल मृगचर्म को शुद्ध कर सकती है; दृढ़-निश्चयी व्यक्ति के द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति उसकी तत्परता पर निर्भर रहती है, वस्तुओं में कोई सहज तात्त्विकता नहीं होती। (६.३६४)

साँप हवा पीकर जिंदा रहता है, अँधेरे बिल में सोता है, नग्न होने के कारण प्रेमक्रीड़ा के समय परकीय आवरण चाहता है; इस प्रकार कंजूसी करके भी वह दूसरों के लिए खजाने की रक्षा करता है। परोपकार करने में क्या कंजूस से भी बढ़कर कोई है? (७.५०२)

नदी-निर्झर शक्तिशाली हो जाते हैं और धरती को समूल पोषित करते हैं, आकाश से पानी बरसता है और दिशाएँ प्रणाली-मुखों से जल बहाती हैं; इस प्रकार वर्षा-ऋतु में सूखी झील भी चारों तरफ़ से भर जाती है। सौभाग्य का उदय होने पर धन सैकड़ों मार्गों से आता है—कौन-सी वस्तु प्रवेशद्वार नहीं बन जाती? (७.५०५)

नियति, थोड़े से घास में आग लगाकर, एक विस्तृत हरा-भरा चरोखर बना देती है; दिन में बहुत तेज़ गरमी बढ़ाकर फिर वर्षा की बौछार कर देती है। इसके कामों की विभिन्नता को देखते हुए कोई विश्वास नहीं किया जा सकता; मानो कि नियति का कोई ऐसा क़ानून है जिसके निर्णय अनिश्चित होते हैं। (८.१९७०)

शांति का परमानन्द प्राप्त करने के लिए महान् आत्मा का होना ज़रूरी है; अन्यथा मन की वृत्तियाँ कोमल या कठोर हो सकती हैं। पदाघात होने पर बुरा लगता है; किंतु आश्चर्य है, चंद्रकांतमणि, पत्थर होने पर भी, अमृत-ज्योति शीतांशु (चंद्रमा) के पद से आहत होकर सस्नेह पिघलने लगता है। (८.३०३०)

नृत्यशाला में विदूषक, प्रहसन में चुटकुले सुनाने वाला, गोशाला का

कुत्ता अपने घर के आँगन में, गिलहरी अपने ढलान पर के बिल में और प्रसन्न वीर-सा लगने वाला चापलूस राजमहल में, अपनी-अपनी शूरता दिखलाते हैं; दूसरी जगह ये झील से बाहर निकाले गए कछुए के समान हो जाते हैं।

(८.३१३९)

बहरहाल, राजतरंगिणी का अध्ययन अंततोगत्वा सरल नहीं है। आठवीं तरंग (३४४९ श्लोकों से युक्त सबसे बड़ी तरंग), जिसमें समकालीन घटनाओं का यथार्थ विषम विवरण है, द्व्यर्थक काव्यरचना-स्वरूप कल्हण की पदावली की गूढ़ता से युक्त है। आधुनिक इतिहासकार के लिए एक और कठिनाई यह है कि कल्हण ने इस प्रकार वर्णन किया है मानो वे तत्कालीन कश्मीर से सुपरिचित अपने समकालीन पाठकों के लिए लिख रहे हों। वे यह मान लेते हैं कि पाठक तत्कालीन छोटे-छोटे पात्रों की भी व्यक्तिगत पृष्ठभूमि से परिचित हैं। वे कई बार व्यक्तियों का पदनाम से ही उल्लेख कर देते हैं। ये दोष, लिखने में भले ही अनभिप्रेत हों, कल्हण के आख्यान के सर्वाधिक प्रामाणिक और विशद अंश की भी कीमत घटा देते हैं।

निस्संदेह, चाहे सामान्य घटनाओं का वर्णन हो, चाहे प्रासाद-षड्यंत्रों के बार-बार आनेवाले प्रसंग; चाहे युद्ध-नायकों या गद्दी पर झूठा अधिकार बतलाने वालों के विद्रोह हों अथवा लोगों की निरंतर कठिनाइयाँ; राजतरंगिणी के अधिकांश भाग में नाटकीय वर्णन नहीं है, अपितु उसकी रचना अनिवार्यत: पद्यमय गद्य में है। पाठक को ऊबने से बचाने के लिए, कल्हण उपमा, विरोधाभास और श्लेष आदि अलंकारों का प्रयोग करते हैं; किंतु वे शायद ही कभी आलंकारिक प्रभाव की उत्पत्ति के लिए प्रयास दिखलाते हैं। गद्यात्मक वर्णन की एकरसता को दूर करने के लिए संक्षिप्त और प्रभावोत्पादक भाषण तथा मनोरंजक वार्तालाप भी समाविष्ट किए गए हैं। फलस्वरूप, पात्रों के अभिप्राय और प्रेक्षकों की पृथक्-पृथक् प्रतिक्रिया को पाठक अच्छी तरह समझ सकता है। इसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु, आख्यान के बीच-बीच में ऐसे पद्य रखे गए हैं जिनमें शिक्षा या नीति कथन करनेवाली सूक्तियाँ हैं और जिन्हें अधिक विस्तृत छंदों में लिखा गया है ताकि वे राजतरंगिणी के सामान्य श्लोकों से अलग दिखाई दें। सर्वसाधारण दैनंदिन प्रकरणों के आलेखन में भी कल्हण ने तीक्ष्ण कविकल्पना का प्रदर्शन किया है और यहाँ भी उनकी भाषा ललित और शालीन है। अत: भारतीय और विदेशी, प्राचीन और नवीन साहित्य-संकलनों में कल्हण को अत्युच्च स्थान प्रदान किया गया है जो वर्णनकर्ता के रूप में उनके अप्रतिम कौशल का आशंसन है। कल्हण द्वारा उद्धृत अनेक कहावतें आज भी कश्मीर में प्रचलित हैं।

प्रागैतिहासिक और प्रारंभिक काल

कल्हण हमें बतलाते हैं कि उन्होंने अपनी रचना शक-संवत् १०७०, लौकिक संवत् ४२२४, (ईस्वी सन् ११४८) में आरंभ की और उसे संवत् ४२२५ (ईस्वी सन् ११५०) में समाप्त किया। पहली तीन तरंगों में ३०५० वर्षों के एकत्र काल का विवरण है। विवरण के अधिकांश भाग में, प्राय: आख्यान-परक परंपराओं और किंवदंतियों के बीच-बीच में, ५२ शासनों की वंशावलियाँ मात्र हैं।

भगवान् शिव की स्तुति से अपने ग्रंथ का आरंभ करते हुए, कल्हण पाठक को 'सहृदय सखा' कहकर संबोधित करते हैं और उस सर्वव्यापी रस के प्रवाह के कारण आनंदप्रदायिनी राजाओं की नदी से...स्वच्छंद पान' करने के लिए आमंत्रित करते हैं। तब वे कश्मीर-घाटी के मूल के विषय में बतलाते हैं जो 'सती-सर' (सती की झील) थी और जलोद्भव राक्षस को मारने वाले प्रजापति कश्यप के प्रादुर्भाव के कारण कश्मीर-राज्य अस्तित्व में आया। 'समस्त नागों के अधि-राज नील द्वारा संरक्षित' यह प्रदेश 'आत्मिक शक्ति द्वारा जेय है, न कि सैनिक शक्ति द्वारा' और 'तेज़ किरणों वाला सूर्य गर्मी में भी कोमल बनकर इसका सम्मान करता है'। कल्हण इस घाटी की विशेषताएँ इस प्रकार बतलाते हैं—'विद्वत्ता,[1] अट्टालिकाएँ, केसर, हिमजल, अंगूर इत्यादि जो कुछ भी यहाँ सर्वसुलभ है; वह स्वर्ग में भी दुर्लभ है।

राजतरंगिणी के प्रारंभ में प्राय: उल्लिखित आख्यान और किंवदंतियाँ कल्हण ने अपनी समकालीन जनश्रुतियों से ली हैं। 'कुछ स्थलों में', स्टीन लिखते हैं, "हम कल्हण को लोकप्रिय परंपराओं का स्पष्टत: विशेषोल्लेख करते हुए पाते हैं जो

---

१. कश्मीर प्राचीन काल से ही विद्वत्स्थली रही है इस बात को सत्यापित करने वालों में ह्यूनसांग भी थे जिन्होंने कल्हण से पाँच सदी पूर्व कश्मीर की यात्रा की थी। अन्य बातों के बीच उन्होंने लिखा, "कश्मीरी लोग विद्याप्रेमी और सुसंस्कृत हैं। शताब्दियों से कश्मीर में विद्या को अत्यधिक आदर दिया जाता रहा है।"

उनके द्वारा या अनुसृत अधिकारियों द्वारा स्वीकृत विवरण से भिन्न हैं।"

कल्हण के अनुसार, प्राचीनतम समय में ५२ राजाओं ने कश्मीर पर शासन किया। इनमें से केवल चार—गोणंद १; उसका पुत्र दामोदर; उसकी पत्नी, यशोवती; उसका पुत्र, गोणंद २—का नीलमतपुराण में उल्लेख है। तत्कालीन जनश्रुतियों को उधार लेते हुए, कल्हण इन राजाओं का महाभारत के कुछ आख्यानों से संबंध जोड़ते हैं। कल्हण यह विवरण देते हैं कि गोणंद १ मगधराज जरासंध का संबंधी था और जब जरासंध कृष्ण से लड़ रहा था, तब गोणंद १ जरासंध की मदद के लिए गया था। लड़ाई में गोणंद १ मारा गया। उसका पुत्र, दामोदर १, जो उसका उत्तराधिकारी बना, अपने पिता के अपमान का बदला लेना चाहता था। वह भी कृष्ण से लड़ता हुआ गांधार में मारा गया। कृष्ण की सलाह पर शिष्टजनों ने उसकी पत्नी गर्भवती यशोवती को रानी बनाया। उसका पुत्र गोणंद २ शैशव में ही राजा अभिषिक्त हुआ। महाभारत के युद्ध के समय वह बालक ही था—संभवतः इसी कारण महाभारत में कश्मीर या उसके शासक का उल्लेख नहीं है।

तब कल्हण (१.८३) अचानक यह बतलाते हैं कि गोणंद २ के बाद 'अनुवर्ती ३५ राजा विस्मृति के सागर में डूब गए, उनसे संबंधित अभिलेखों के नष्ट हो जाने के कारण उनके नाम और काम भी विनष्ट हो गए।

(भारत की सबसे बड़ी मीठे पानी की झील) वूलर झील में एक नगर के डूब जाने[1] के आख्यान अभी भी प्रचलित हैं, साथ ही इन अंतिम राजाओं से संबंधित लोलर, बोंबुर, नागराय और हिमाल की लोककथाएँ भी।

कश्मीरियों में यह विश्वास भी प्रचलित है कि पांडववंशी[2] राजाओं ने भी एक समय घाटी में राज्य किया था, और उपर्युक्त विस्मृत राजाओं में कम-से-कम २३ पांडववंशी थे। ऐसा कहा जाता है कि अर्जुन का एक प्रपौत्र हरणदेव इन राजाओं में सबसे पहला था जिसने गोणंद २ की हत्या की साजिश करके उसके बाद पांडव-वंश की स्थापना की।

इन राजाओं के बाद जो आठ राजा हुए वे हैं—लव, कुश, खगेंद्र, सुरेंद्र, गोधर, सुवर्ण, जनक और शनीचर। इनमें से पहले चार एक वंश के थे और बचे हुए दूसरे वंश के। इन शासकों द्वारा संस्थापित कुछ नगरों के चिह्न खोज लिए गए हैं, किंतु इनकी ऐतिहासिकता के विषय में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं मालूम हो पाया है।

राजतरंगिणी में पहला ऐतिहासिक नाम अशोक का है। कल्हण के अनुसार

---

१. कुछ मुस्लिम पुरालेखकों द्वारा प्रदत्त सूचना विश्वास के अयोग्य पाई गई है।

२. विख्यात मार्तंड और दूसरे पुराने मंदिरों के ध्वंसावशेष सामान्य लोगों की भाषा में पांडव-लारी—पांडवों के भवन—कहे जाते हैं।

अशोक ने जिन धर्म (अर्थात् बौद्ध धर्म) अंगीकार कर लिया था और स्तूप व विहार बनाने के अलावा श्रीनगरी नामक एक नगरी भी बसाई थी। उसने अशोकेश्वर नामक एक शैव-मंदिर बनवाया। कल्हण अशोक का उल्लेख एक स्थानीय शासक के रूप में करते हैं; किन्तु (तिथियों के समयक्रम में अंतर होने के बावजूद) इतिहासकार यह मानते हैं कि यह वही मगध-सम्राट् अशोक है जिसका आधिपत्य पूर्व में बंगाल तक और पश्चिम में हिंदूकुश तक था।

कल्हण कहते हैं कि अशोक ने कश्मीर में हरमुकुटगंगा के तीर्थस्थल में शिव-भूतेश की पूजा की और "तपस्या द्वारा भगवान् को प्रसन्न करके एक पुत्र प्राप्त किया।" वह पुत्र, जलौक, अशोक का उत्तराधिकारी बना और एक स्वतंत्र सम्राट् हुआ। कल्हण द्वारा उल्लिखित अनेक परंपराओं का वह नायक है। वह प्रतिदिन भूतेश और विजयेश्वर के मंदिरों में पूजा करने जाता था। महान् योद्धा जलौक ने म्लेच्छों[1] को देश के बाहर निकाल दिया जो संभवतः कश्मीर के सीमांत प्रदेशों को जीतने की कोशिश करने वाले इंडो-ग्रीक आक्रमणकारी थे। ६० वर्षों के शासन के बाद जलौक अपनी रानी के साथ अंतिम दिन मननपूर्वक व्यतीत करने के लिए राज्यकार्य से निवृत्त होकर शिरामोचन में चला गया।

दामोदर २, संभवतः अशोक का वंशज, जलौक का उत्तराधिकारी बना। उसने पठार के ऊपर दामोदर उदर नामक एक नगर बसाया; यहाँ पर श्रीनगर का हवाई अड्डा है और वह अभी भी इसी नाम से जाना जाता है।

मौर्य साम्राज्य के अस्त होने के बाद पश्चिमोत्तर भारत में लगातार विदेशी आक्रमण होते रहे। कश्मीर घाटी भी इन आक्रमणों से बच नहीं सकी होगी। किंतु दामोदर २ की मृत्यु और कुषाण (तुरुष्क) सम्राटों के आगमन के बीच राजतरंगिणी में प्रायः दो शताब्दियों का अंतर है। हुष्क, जुष्क और कनिष्क नामक तीन कुषाण राजाओं का क्रमशः हुविष्क (शिलालेखों के साक्ष्य के आधार पर), वशिष्क और कनिष्क १ या २ (अधिक सही रूप में पहले) के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाने के कारण—हम एक बार फिर से, कल्हण की मदद से, प्रामाणिक इतिहास की ठोस धरती पर पैर रखते हैं। संभवतः एक ही समय शासन करने वाले इनमें से प्रत्येक शासक ने एक-एक नगर बसाया। ये अभी भी उनके नाम से जाने जाते हैं—हुष्कपुर, जुष्कपुर और कनिष्कपुर।

कल्हण द्वारा दिया गया तुरुष्क शासकों का विवरण कश्मीर घाटी में कुषाण शासन का रहना सिद्ध करता है। (उनके द्वारा कश्मीर में बौद्ध धर्म का प्रसार अन्य स्रोतों से भी पुष्ट होता है, विशेषकर ह्यूनसाँग व अल्बेरुनी)। बौद्ध परंपरा के अनुसार, कनिष्क ने कश्मीर में तृतीय बौद्ध संगीति बुलवाई। कुषाणों द्वारा

---

१. तुलनीय पृ० २२, पाद-टिप्पणी।

अनेक मठों और चैत्यों का बनवाया जाना निश्चित जान पड़ता है, यद्यपि इनमें से कोई भी बचा हुआ नहीं है। ऐतिहासिक बौद्ध संगीति बौद्ध-धर्म के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण विभाजन रेखा है। इस संगीति ने महायान सिद्धांत को एक उच्च पद प्रदान किया, जो कश्मीर में ही कल्पित और विकसित किया गया था।

अश्वघोष के उपरांत द्वितीय स्थविर माने जाने वाले और महायान के महत्तम व्याख्याकार नागार्जुन[1], कल्हण के अनुसार, अपने जीवन के अधिकांश भाग में, शारदर्दवन (आधुनिक हरवन, जहाँ बौद्ध ध्वंसावशेष खोदकर निकाले गए हैं) के विद्यापीठ में रहे।

ऐसा प्रतीत होता है कि महान् कुषाणों के पतन के उपरांत, स्थानीय शासक, जैसे अभिमन्यु १, सत्ता में आए; किंतु अपने कुषाण संबंधों के बावजूद वे बौद्ध-धर्म-विरोधी लहर को रोक नहीं सके। आगामी राजा गोणंद ३ और बाद के चार राजाओं में से हर एक ने कश्मीर के परंपरागत धर्म शैव हिंदूधर्म को बढ़ावा दिया। इसके बाद की कड़ी में पाँच और राजाओं का उल्लेख है।

कल्हण द्वारा उल्लिखित दूसरा विशिष्ट राजा है मिहिरकुल, वंकुल का पुत्र और उत्तराधिकारी। वह निःसंदेह गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद उत्तर भारत के एक विशाल क्षेत्र पर शासन करने वाला श्वेत हूण शासक था। कश्मीर घाटी में उसके अधिकार को ह्यू न साँग[2] और शिलालेख आदि दूसरे साक्ष्य भी पुष्ट करते हैं। कल्हण के विवरण के अनुसार मिहिरकुल एक निर्दयी शासक था जिसे बौद्धों और उनके स्तूपों व विहारों का विनाश करने में राक्षसी आनंद आता था। ऐसा कहा जाता है कि उसने सिंहल के राजा को बुरी तरह हराया था। कल्हण बतलाते हैं कि उसने श्रीनगर के समीप शिव[3] का मंदिर बनवाया और अपने नाम से मिहिरपुर नामक शहर बसाया। किसी मानसिक रोग से पीड़ित होकर उसने आत्महत्या कर ली।

मिहिरकुल की मौत के बाद सौ सालों तक कश्मीर का इतिहास फिर से विस्मृत-सा हो जाता है। उसके उत्तराधिकारियों में एक गोपादित्य था, जो राजतरंगिणी में उल्लिखित अन्यों की अपेक्षा ऐतिहासिक यथार्थता के अधिक निकट है, क्योंकि उसने गोप-पर्वत पर ज्येष्ठेश्वर नामक मंदिर बनवाया था—जिसे आजकल श्रीनगर में शंकराचार्य पर्वत कहते हैं। उसका प्रपौत्र खिंखिल वही हूण शासक है जो अपनी मुद्राओं में स्वयं को देवशाही किंहिगिल कहता है।

---

१. जापानी विद्वानों की अधुनातम टीकाओं के द्वारा नागार्जुन के—समीक्षात्मक व सूक्ष्म—दर्शन में अभिरुचि फिर से जागरित हो गई है।

२. सि-यु-कि (बील द्वारा अनुवादित) ?, पृ० १६७।

३. कैटेलॉग् आफ़ कॉइन्स इन् दि इंडियन म्यूज़ियम में शिव के उपासक के रूप में मिहिरकुल के कल्हण-कृत वर्णन को वि० स्मिथ इस राजा की मुद्राओं के द्वारा सत्य सिद्ध करते हैं।

राजतरंगिणी की दूसरी तरंग में जिन ६ राजाओं के शासन का उल्लेख है वे भिन्न वंशों के हैं। कश्मीर के जिन शिष्टजनों ने युधिष्ठिर १ को पदच्युत करके निष्कासित करवा दिया था, उन्होंने ही राजा विक्रमादित्य के एक संबंधी को आमंत्रित किया और प्रतापादित्य १ के नाम से कश्मीर का राजा अभिषिक्त किया। आंतरिक फूट से विच्छिन्न राज्य कुछ समय के लिए 'हर्ष व अन्य परदेशी राजाओं' के अधीन रहा। एक ऐसा अनुमान किया गया है कि कल्हण का इशारा उज्जैन के हर्ष विक्रमादित्य की ओर था जिसने ६वीं सदी ई० के उत्तरार्द्ध में राज्य किया था; किंतु कल्हण की कालगणना में संभवतः भूल है। प्रतापादित्य १ और उसके पुत्र व उत्तराधिकारी जलौक के विषय में कल्हण कहते हैं कि इनमें से प्रत्येक ने ३२ वर्ष तक समुचित राज्य किया।

आगामी शासकतुंजिन निष्कासित राजा युधिष्ठिर का वंशज था। तुंजिन के शासनकाल में असंख्य प्राणों की बलि लेने वाले दारुण अकाल का कल्हण ने विशद वर्णन किया है। तुंजिन की पुण्यात्मा पत्नी वाक्पुष्टा ने कटिमूष (आधुनिक कैमूह) और रामूष (आधुनिक रामूह) नामक दो नगर बसाए। राजतरंगिणी की दूसरी तरंग में अंतिम राजा हैं आर्यराज जिसके सिंहासन त्यागने से गोणंद वंश का फिर से कश्मीर पर शासन हो गया।

पहला राजा मेघवाहन गोपादित्य का पुत्र था। वह असम के राजा की पुत्री के स्वयंवर में गया था और उस (अमृतप्रभा) ने उसे अपना पति चुना। वह एक प्रतिभाशाली और पुण्यात्मा शासक था और उसने सिंहल द्वीप तक विजय-यात्राएँ कीं। उसने मेघवन नामक शहर बसाया और उसकी रानी ने (अपने नाम से अमृत-भवन नामक) एक विहार विदेशी भिक्षुओं के रहने के लिए बनवाया।

दूसरा उल्लेखनीय राजा कवि मातृगुप्त[१] था जो उज्जैन के राजा विक्रमादित्य द्वारा मनोनीत था। यह कवि राजा ज्ञान का संरक्षक था। कल्हण कहते हैं कि उसने हयग्रीववध के लेखक महान् कवि मेण्ठ को अपना संरक्षकत्व प्रदान किया था। वैष्णव मत का अनुसरण करते हुए उसने विष्णु मातृगुप्तस्वामी का मंदिर बनवाया। विक्रमादित्य की मृत्यु के कारण उसकी स्थिति काफ़ी कमज़ोर पड़

---

१. कुछ विद्वानों ने महान् संस्कृत कवि और नाटककार कालिदास के साथ मातृगुप्त का तादात्म्य स्थापित करने के प्रयत्न किये हैं। कालिदास 'यद्यपि उज्जैन के निवासी थे... संभवतः कश्मीरी थे...वे अपने चित्रणों के लिए मुख्यतः उत्तर भारत, विशेषतः हिमालय के प्राकृतिक इतिहास और भूगोल को आधार बनाते हैं' डा० भाऊदाजी की इस शोध का डा० एल० डी० कल्ला ने भी अनुसरण किया और कश्मीर को कालिदास की जन्मस्थली बतलाया।

गई; अतः मातृगुप्त ने प्रवरसेन २ के[1] पक्ष में स्वेच्छा से सिंहासन त्याग दिया। ऐसा कहा जाता है कि साहसी योद्धा प्रवरसेन ने घाटी के बाहर भी विजय-यात्राएँ कीं और गंगा-यमुना का कछार, सौराष्ट्र तथा त्रिगर्त-देश को जीता। इस कार्य के द्वारा उसने उज्जैन के एकाधिपत्य को झकझोर दिया। उसने प्रवरपुर नामक शहर बसाया—उसी जगह जहाँ आजकल श्रीनगर है।

प्रवरसेन के बाद का चौथा राजा रणादित्य विशेष उल्लेखनीय है क्योंकि उसके द्वारा ३०० वर्षों तक शासन करने की जनश्रुति का कल्हण उद्धरण देते हैं। मजूमदार[2] का यह दृष्टिकोण है कि 'किसी राजा का इस प्रकार का असाधारण शासनकाल निःसंदेह इस काल के वास्तविक इतिहास का लुप्त होना बतलाता है।' त्रिवेद[3] कहते हैं कि इतनी लंबी अवधि किसी यौगिक शक्ति के कारण थी और फिर यह जोड़ते हैं "बीच के काल में किसी प्रजातंत्र के अस्तित्व की अनेक विद्वान् कल्पना करते हैं।" ऐसा कहते हैं कि रणादित्य ने राजा रतिसेन की पुत्री चोल राजकुमारी रणरंभा से विवाह किया था। कल्हण उसके शिव-मंदिर और दूसरे निर्माणों के विषय में विस्तार से लिखते हैं।

रणादित्य के पुत्र विक्रमादित्य ने ४२ वर्ष राज्य किया। उसके द्वारा कुछ पवित्र निर्माणकार्यों के किये जाने का कल्हण उल्लेख करते हैं। राजतरंगिणी की तृतीय तरंग के अंत में उल्लिखित अंतिम राजा दुर्लभवर्धन है जो एक चतुर और बुद्धिमान् राजा था एवं जिसने मंत्री [illegible] के साथ अपनी पत्नी के अनाचार को माफ़ कर दिया था। उसकी मृत्यु के साथ ही गोणंद-वंश समाप्त हो गया।

---

१. प्रवरसेन के सिक्के उसकी ऐतिहासिकता को सिद्ध करते हैं और कुषाण व एफ्थेलाइट राजाओं से संबंध प्रकट करते हैं। सातवीं सदी के अंत तक कश्मीर के राजा किदर कुषाण (छोटे कुषाण) शाखा में से थे।

२. मजूमदार आर० सी०; 'क्लासिकल एज', पृ०-१३२।

३. त्रिवेद डी० एस०; 'दि जर्नल आफ़ दि बिहार एंड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी', १९३८ 'पोलिटिकल हिस्ट्री आफ़ कश्मीर' १९७४ में डा० के० एस० सक्सेना द्वारा उद्धृत।

कर्कोट और उनके बाद

कश्मीर में कर्कोटों का उदय महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इस राजवंश ने कई शताब्दियों तक कश्मीर घाटी को सुस्थिर शासन प्रदान किया जिस समय शेष भारत में अनेकों राजपूत राज्यों का उत्थान और पतन हो रहा था।

'कर्कोट' इस वंशनाम का मूल दुर्लभवर्धन से माना गया है जिसकी उत्पत्ति कर्कोट नाग (३,५२९-३०), एक बहुपूजित सर्पदेवता, से मानी गई है। स्पष्टतः अज्ञात पृष्ठभूमि वाले दुर्लभवर्धन को एक कीर्तिधवल वंशवृक्ष प्रदान करने के लिए ही आख्यानपरक नाग (कर्कोट) से उसका उद्‌गम बतलाया गया है।

ह्यू्न साँग ने दुर्लभवर्धन के शासनकाल (६२५-६६१ ई०) में कश्मीर-घाटी की यात्रा की। उसके अनुसार तत्कालीन कश्मीर-राज्य में कश्मीर-घाटी के अलावा तक्षशिला (सिंधुपूर्व), उरस (हजारा) और सिंहपुर (राजपुरी व पुंछ के छोटे पर्वतराज्य और नमक की पहाड़ियाँ) थे। अपने प्रथित समकालीन कान्यकुब्जेश्वर हर्षवर्धन के समान दुर्लभवर्धन भी बौद्ध था। दुर्लभवर्धन का पुत्र प्रतापादित्य २ दुर्लभक (६६१-७११ ई०) अपने पिता की मृत्यु के बाद राजा बना। दुर्लभक के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र चंद्रापीड उत्तराधिकारी बना। कुछ लोग उसका तादात्म्य चीनी वृत्तांतों में उल्लिखित त-चेन-तो-लो-पि-लि से स्थापित करते हैं जो ७१५ व ७२० ई० के बीच कश्मीर पर शासन करता था। वह अपने पुण्याचरण और न्याय के लिए प्रसिद्ध था, जो कल्हण की अनेक कथाओं के प्रसंग हैं।

कर्कोट राजाओं में मुक्तापीड ललितादित्य (६९९-७३६ ई०) बहुशक्ति-संपन्न सम्राट् था जिसका आधिपत्य कश्मीर से दूर-दूर समीपवर्ती प्रदेशों पर भी था। वह विजय प्राप्त करने के लिए उत्सुक था और उसका अधिकांश जीवन विजय-यात्राओं में व्यतीत हुआ। उसके सामंतों के पास जलंधर व लोहार

(आधुनिक कांगड़ा और पुंछ) थे; और कहा जाता है कि उसने कन्नौज[1], बंगाल, उड़ीसा और 'कंबोज' (पूर्वी अफ़गानिस्तान) पर आक्रमण किया था। कल्हण स्पष्टतः कहते हैं कि ललितादित्य उड़ीसा के तट से पश्चिम की ओर आगे बढ़ा था और रट्ट रानी की सहायता से विंध्याचल को पार किया था। ललितादित्य का गमन-मार्ग भौगोलिक क्रम से खोज लिया गया है। किंतु उसका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अभियान यशोवर्मा के विरुद्ध था; इस विजय के द्वारा ललितादित्य न केवल कन्नौज का स्वामी बन गया, अपितु एक विशाल क्षेत्र पर भी उसका आधिपत्य हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने मालवा और गुजरात पर विजय प्राप्त की थी और सिंध के अरबों को हराया था।

कश्मीरी अपने राजा के द्वारा तुर्कों[2] पर विजय की भी गाथा गाते हैं। ऐसा कहते हैं कि ललितादित्य तुखार देश से चनकुण को लाया था और उसे अपना मंत्री बनाया था। कल्हण के अनुसार चनकुण ने एक स्तूप और दो विहार[3] बनवाए थे।

इन विस्तृत विजयों ने[4] ललितादित्य के समय कश्मीर के राज्य को गुप्तकाल के बाद का सर्वाधिक शक्तिमान साम्राज्य बना दिया। राजा के द्वारा बनवाए गए मार्तण्ड मंदिर के ध्वंसावशेष अभी भी कश्मीर के सर्वाधिक प्रभावोत्पादक प्राचीन अवशेष हैं। "उसके शासनकाल में निर्मित कुछ स्तूप, विहार और चैत्य खोदकर निकाले गए हैं और एक निर्माता के रूप में सम्राट् की कीर्ति को ये अवशेष न्यायोचित सिद्ध करते हैं।"[5] ललितादित्य के द्वारा बसाए गए नगर परिहासपुर में बौद्ध विहार हिंदू मंदिरों के पास-पास थे; और दोनों के अवशेष ललितादित्य की धार्मिक सहिष्णुता को प्रदर्शित करते हैं। यह योग्य सम्राट्, जो भारतीय इतिहास में योद्धा व सुयोग्य शासक के रूप में अमर हो गया, अपनी एक विजय-यात्रा में मारा गया। उसने पहले से ही अपने मंत्रियों को यह निर्देश दे रखे थे कि मनु और दूसरे स्मृतिकारों द्वारा विज्ञापित राज्य के सप्तांग सिद्धान्त के प्रकाश में इस तरह की आपात-घटना के समय किस प्रकार कार्य करना चाहिए।

---

१. ललितादित्य के सिक्के कन्नौज, बाँदा, फैजाबाद, वाराणसी (राजघाट और सारनाथ), नालंदा और मुंगेर में पाए गए हैं। स्पष्टतः ललितादित्य द्वारा अनुसृत मार्ग बतलाते हैं, संभवतः उसकी पूर्व की विजययात्रा का।

२. अल्बेरूनी के विवरण में, स्थानीय परंपरा के अनुसार कश्मीरी राजा मुत्तई (मुक्तापीड) ने तुर्कों पर विजय पाई।

३. चीनी यात्री आऊ-काँग ने इनमें से एक की यात्रा की थी। कल्हण के समय, चनकुण के विहार को सुस्सल, एक मंत्री की पुण्यात्मा पत्नी, ने सुधरवाया था।

४. भौट्ट या तिब्बतियों पर ललितादित्य की बाद की विजय को चीनी (तंग) वृत्तांत भी प्रमाणित करते हैं।

५. राय एस० सी०; अर्ली हिस्ट्री एंड कल्चर आफ़ कश्मीर, पृ० ४६

ललितादित्य न केवल एक सैनिक प्रतिभा और महान् योद्धा था; अपितु एक सुयोग्य शासक और कला व साहित्य का संरक्षक भी था। कल्हण के अनुसार, उसने यशोवर्मा को पराजित करने के बाद उसके राजकवि वाक्पतिराज और भवभूति को अपने संरक्षण में ले लिया था। विदेशी विद्वान् कश्मीर को पूजास्थली मानते थे; अनेक विदेशी सांस्कृतिक मंडलों का ससम्मान स्वागत किया जाता था। ललितादित्य ने कला के कश्मीरी संप्रदाय की स्थापना की जिसमें ग्रीक, गांधार और स्वदेशी (गुप्त) शैलियाँ भी अंतर्भूत हैं।

कश्मीरी लोग शताब्दियों तक ललितादित्य की विजयों के गीत गाते रहे और क्षम्य अतिशयोक्ति पूर्वक, उसे विश्वविजयी सम्राट् कहते रहे। तथापि ललितादित्य के अपने दोष भी थे जिन्हें कल्हण ने छिपाया नहीं। राजतरंगिणी से यह स्पष्ट है कि ललितादित्य औरत और शराब का शौकीन था। ३१ वर्ष के शासन के उपरांत, ललितादित्य लगभग ७३६ ई० में स्वर्गवासी हुआ। उसके उत्तराधिकारी निर्बल और निष्क्रिय थे; वे कर्कोट वंश की शक्ति और ख्याति को बरकरार नहीं रख सके।

तथापि ललितादित्य के पाँचवें वंशज और प्रपौत्र जयापीड (७५१-७८२ ई०) ने कश्मीर की खोई हुई सार्वभौमिकता को फिर से पाने का गहन प्रयास किया। कल्हण विस्तारसहित ८०,००० की विशाल सेना का नेतृत्व करने वाले जयापीड की प्रयाग, कन्नौज और नेपाल तक की बिजय-यात्राओं का वर्णन करते हैं। उसके प्रेम-प्रकरणों ने उसे बंगाल भी पहुँचाया जहाँ उसने जयंत नामक राज़ा की पुत्री से विवाह किया। जयापीड[1] भी ललितादित्य के समान दिग्विजय करने निकला। उसने भी वूलर झील के किनारे जयपुर नामक एक नगर बसाया (जिसे आजकल अंदर कोट कहते हैं) और अपने चारों ओर विद्वान् इकट्ठे किये जिनमें दामोदर गुप्त, मनोरथ और शंखदत्त प्रमुख थे। उसके मंत्रियों में वामन भी थे जो पाणिनीय व्याकरण की सुप्रसिद्ध टीका काशिकावृत्ति के सहलेखक थे। उसके परदादा के समान उसके वीरकर्मों की अनेक लोककथाएँ हैं।

उसके शासन के अंतिम दिनों में जब उसकी अत्युच्च महत्त्वाकांक्षाओं के कारण खजाना खाली हो गया, तब जयापीड लालची हो गया और प्रजा से अत्यधिक कर उगाहने लगा। वूलर झील के नाग-देवता के द्वारा समीप-स्थित ताँबे की खदान बताये जाने की कहानी राजा की स्रोतवृद्धि की इच्छा प्रकट करती है। सेना का वेतन बकाया था और प्रशासन एक दलदल बन गया था। अपने वित्त सलाहकार शिवदास की सहायता से राजा ने—लगातार तीन साल तक—जोतने

१. जयापीड उर्फ वीणादित्य के अनेक कर्कोटवंशी मिश्रधातु के सिक्के पाए गए हैं किंतु इस बात के बहुत कम समकालीन प्रमाण मिले हैं कि कवि-इतिहासकार के द्वारा वर्णित विस्तृत विजय-यात्राएँ उसने सचमुच की थीं।

वाले के हिस्से समेत संपूर्ण कृषि की उपज अपने अधीन कर ली। ब्राह्मण उसके खास शिकार बने और विशाल संख्या में देश छोड़कर चले गये। राजा के दिल और तौर-तरीक़े को बदलने के लिए ब्राह्मणों ने प्रायोपवेश भी किया—जो भारत में राजनीतिक संघर्ष की अहिंसात्मक पद्धति का एक प्राचीनतम उदाहरण है। कल्हण उस दृश्य का सशक्त नाटकीय वर्णन करते हैं जिसमें उत्तेजित ब्राह्मणों के क्रोध के कारण एक दुर्घटना हुई जिसका अंत हठी राजा की मृत्यु में हुआ। इसे चित्रित करने वाले कुछ पद्य 'वर्णनकर्त्ता के रूप में कल्हण' (पृ० ४६-५०) नामक अध्याय में दिये जा चुके हैं।

जयापीड का लड़का ललितापीड औरत व शराब का शौकीन था और अपने राजकीय कर्तव्यों की उपेक्षा करता था। कल्हण के शब्दों में, राज्य को 'अनैतिकता से विभाजित' कर दिया था। ललितापीड के बाद उसका भाई संग्रामपीड २ राजा बना जिसने सात महत्त्वहीन वर्षों तक राज्य किया; और उसके बाद गद्दी पर झूठा अधिकार बतलाने वाले मैदान में आए। लड़ाइयाँ होती रहीं और प्रतिस्पर्धी दलों के कठपुतली राजा गद्दी पर बैठते रहे।

ललितादित्य के दीप्तिमान शासन के साथ ही कर्कोटों की कीर्ति अपने चरम शिखर पर पहुँची जब कश्मीर एक छोटी रियासत से बढ़कर एक विस्तृत साम्राज्य बन गया। तथापि, सब मिलाकर, कर्कोटों के शासनकाल को कश्मीरी इतिहास का सर्वाधिक यशस्वी काल मानना चाहिए। प्रारंभिक कर्कोटों की विजय-यात्राओं के विषय में कल्हण के अतिशयोक्तिपूर्ण कथन के बावजूद, उसके द्वारा समीपवर्ती क्षेत्रों के एकीकरण और उत्तर भारत के अधिकांश भाग के अधिग्रहण के विषय में विवाद नहीं है। किंतु जिस समय संग्रामपीड २ का बेटा अनंगपीड गद्दी पर बैठा, उस समय तक इस कांतिमान वंश का प्रशासन निर्बल और अराजक हो गया था। षड्यंत्रों के फलस्वरूप, उसे हटाकर उत्पलपीड राजा बन गया। कर्कोट-लक्ष्मी पीली पड़ रही थी—कश्मीर के सम्राट् भारतीय इतिहास की पृष्ठभूमि में पीछे हो गए थे।

एक तीक्ष्ण बुद्धि मंत्री सुर ने उत्पलपीड को हटाकर उत्पलक के पौत्र अवंतिवर्मा को राजा बना दिया। अवंतिवर्मा (८५५/६-८८३ ई०) के राज्यारोहण से कश्मीरी इतिहास का वह अध्याय प्रारंभ होता है जिसका राजतरंगिणीकार सही ऐतिहासिक विवरण देते हैं। अवंतिवर्मा की याद अभी भी उसके द्वारा स्थापित नगर अवंतिपुर के (अवंतीश्वर और अवंतिस्वामी) मंदिरों के अवशेषों द्वारा ताजी है—जो "ललितादित्य और निर्माणों के तुल्य तो नहीं हैं, फिर भी प्राचीन कश्मीरी वास्तुशिल्प के सर्वाधिक प्रभावोत्पादक स्मारकों की पंक्ति में आते हैं।" उसका मंत्री सुर बहुत शक्तिशाली था क्योंकि उसने अवंतिवर्मा को राजा बनाने में प्रमुख भूमिका अदा की थी। पुण्यकार्यों और महत् आधारशिलाएँ रखने में सुर

राजा से होड़ करता था। वह विद्वानों का राजदरबार में आसन देकर सम्मान करता था। राजा के द्वारा संरक्षित विद्वानों में सुविख्यात मुक्ताकण, कविद्वय शिवस्वामी रत्नाकर और प्रतिभाशाली दार्शनिक भट्ट कल्लट्ट थे।

मंदिर की जायदादों पर ज़बर्दस्ती कब्ज़ा कर लेने वाले धन्वप्रमुख डमारों को सुर ने फ़ौलादी हाथों से दबा दिया। इस विघ्नकारी घटना के अतिरिक्त अवंतिवर्मा का शासन प्रायः शांतिमय था और राजा ने आर्थिक पुनरुत्थान को उच्च प्राथमिकता प्रदान की। वह बाढ़ और अकाल से मुक्ति चाहता था एवं घाटी की अक्सर यात्रा किया करता था। उसने यह काम अपने दूसरे योग्य मंत्री सुय्य को सौंपा जो एक विख्यात इंजीनियर था। सुय्य ने नदियों पर बड़े-बड़े काम करवाए। घाटी में जलप्रवाह हेतु और भूमि के विस्तृत क्षेत्रों को सींचने के लिए बारामूला के नीचे वितस्ता (झेलम) का मार्ग बदल दिया गया। देश को विनाशकारी बाढ़ों से बचा लिए जाने से जनता को बहुत अधिक लाभ मिला। सुय्य ने इन उपायों के साथ-साथ सिंचाई-व्यवस्था को सुधारने का उतना ही महत्त्वपूर्ण क़दम भी उठाया जो कश्मीरियों के मुख्य भोजन चावल की खेती के लिए एक वरदान सिद्ध हुआ। सुय्य की स्मृति झेलम के किनारे स्थापित नगर सुय्यपुर के द्वारा सुरक्षित है—जिसे आजकल सोपुर कहते हैं।

त्रिपुरेश्वर (आधुनिक त्रिफर) पर्वत पर अवंतिवर्मा के देहावसान का तरीक़ा उसके जीवन की विशेषता बतलाता है। वैष्णव-मत में विश्वास रखने पर भी अपने मंत्री की भावनाओं का आदर करते हुए वह शिव की पूजा करता था। यह रहस्य उसने मृत्युशय्या पर सुर को बतलाया। कल्हण के अनुसार (५,१२५)[१], "अंत में, भगवद्गीता को सुनते हुए और वैष्णव ज्योति का ध्यान करते हुए वह, परमात्मा का दर्शनलाभ करते हुए, जीवन से मुक्त हो गया।"

यद्यपि अवंतिवर्मा के शासन में प्रादेशिक विजयों की चमक नहीं थी, वह एक योग्य राजा और प्रशासक सिद्ध हुआ व उत्पलवंश का कीर्तिस्तंभ था।

अवंतिवर्मा के पुत्र और उत्तराधिकारी शंकरवर्मा (८८३-९०२ ई०) से उन राजाओं की श्रेणी प्रारंभ होती है जिनके राज्य के सिक्कों की निरंतर शृंखला दृश्यमान है जिनसे ऐतिहासिक कृति के रूप में राजतरंगिणी का मूल्य काफ़ी बढ़ गया है। शंकरवर्मा ने प्रवरसेन, ललितादित्य और जयापीड के वीरकर्मों से होड़ लेने की इच्छा से अपनी विजययात्रा प्रारंभ की, एक विशाल सेना के साथ (कल्हण के द्वारा दी गई ९ लाख की संख्या अतिशयोक्तिपूर्ण मालूम पड़ती है) जो सामंतों के अपने-अपने दल-बल के साथ जुड़ जाने के कारण बढ़ती गई। उसने कश्मीर के दक्षिणी पहाड़ी क्षेत्रों को फिर से जीत लिया जो कर्कोट वंश के अंतिम

१. गीता के धार्मिक पाठग्रंथ के रूप में प्रयोग किये जाने का यह अभिलिखित इतिहास में पहला उदाहरण माना गया है।

दिनों में खो गए थे। उसकी महानतम विजय पंजाब में (झेलम और चिनाब के बीच) गुर्जरनरेश अलखम पर थी जिससे उस दिशा में उसका राज्य बढ़ गया।

सिंधु की तरफ़ के एक अभियान में, जहाँ शंकरवर्मा को अनेकों राजाओं ने उपहार दिये, उरस—आधुनिक हजारा ज़िले—में से वापिस आते हुए उसे प्राणघातक चोट लगी। यद्यपि शंकरवर्मा की विजय-यात्राएँ कश्मीर के समीपवर्ती प्रदेशों तक ही सीमित थीं, उसने राजकीय कोष को क़रीब-क़रीब ख़ाली कर दिया। इसलिए शंकरवर्मा ने 'बड़ी चतुराई से वसूली' करते हुए लोगों को सताया। (मुख्यरूप से लाने लेजाने के लिए जबर्दस्ती मज़दूरी) बेगार[1] को सगठित रूप से प्रारंभ करने के लिए शंकरवर्मा की याद की जाएगी। कल्हण इस शासन के दुखद परिणामों पर कटु टीका करते हैं जो केवल लालची राज-कर्मचारियों के अनुकूल था और जिसमें विद्वान् आय-रहित थे।

शंकरवर्मा के शासन के बाद उत्तराधिकार के लिए जो संघर्ष हुए उनमें लोगों की कठिनाइयाँ बहुत बढ़ गईं। उसका पुत्र गोपालवर्मा (९०२-९०४ ई०), जो अभी बालक ही था, अपनी माता सुगंधा के संरक्षकत्व में गद्दी पर बैठा। यह बालक राजा एक मंत्री के जादू का शिकार हो गया और ९०४ ई० में सुगंधा स्वयं गद्दी पर बैठी। अपने निम्न आचरण के कारण तिरस्कृत सुगंधा को दो वर्षों के संक्षिप्त शासन के बाद तंत्रियों ने हटा दिया। वह अपने द्वारा स्थापित नगर सुगंधापुर के कारण याद रहेगी। दसवीं सदी के पहले पच्चीस वर्षों में अज्ञात उद्गम की सैनिक जाति के तंत्री व्यवहारतः कश्मीर के अंगरक्षक बन गए। ९१७-१८ ई० में बाढ़ के द्वारा शारदीय चावल की फ़सल नष्ट हो जाने के फलस्वरूप घाटी में एक भयंकर अकाल पड़ा—मनुष्यों के द्वारा दी जानेवाली यातनाओं का प्राकृतिक कोप ने साथ देकर जनता के कष्टों का प्याला लबालब भर दिया। तंत्री लोग—एक दूसरी सैन्यजाति के एकांगों के साथ मिलकर—अपनी इच्छा से चाहे जिसे गद्दी पर बैठालते या गद्दी से उतार देते। राजदरबार भ्रष्ट और दुराचारी था। तंत्रियों को चक्रवर्मा ने हराया जिसने राज्य तीसरी बार फिर से प्राप्त किया। उसने हंसी नामक एक डोंब लड़की से विवाह किया और उसे अपनी पटरानी बनाया। उसका दरबार उसके ही समान दुराचारी था। कुछ असंतुष्ट डमारों ने, जिन्होंने राजगद्दी पाने में उसकी सहायता की थी, ९३७ ई० में हंसी के कक्ष में उसकी हत्या कर दी।

आगामी राजा उन्मत्तावंति (पागल अवंति) भी कुछ कम दुराचारी और निरंकुश नहीं था। उसने अपने सौतेले भाई को भूखे रखकर मार डाला और अपने पिता पार्थ की हत्या करवा दी। वृद्ध पार्थ को अपनी रोती हुई पत्नी के

---

१. इस शताब्दी के प्रारंभ तक बेगार कश्मीरी प्रशासन की एक विशिष्ट बात थी।

पास से ले जाया गया, सड़क पर बाल पकड़कर घसीटा गया और कल्हण के शब्दों में (५, ४३२-३४), "निरस्त्र, क्षुधाक्षीण, नग्न और रोते हुए (पार्थ को) उन्होंने मार डाला"। पार्थ के शव को एक अधिकारी द्वारा लात मारे जाने पर राजा अवन्ति बहुत हँसा। दो वर्षों के संक्षिप्त उपद्रवपूर्ण शासन के बाद ९३९ ई० में उन्मत्तावन्ति क्षयरोग से मर गया।

एक गद्दी पर ज़बर्दस्ती कब्ज़ा करनेवाले के विरुद्ध सेनापति कमलवर्धन के विद्रोह के फलस्वरूप ब्राह्मणों की एक सभा ने एक विद्वान् परंतु निर्धन कश्मीरी यशस्कर को सिंहासन पर बैठाया। यशस्कर का जनहितैषी शासन (९३४-९४८ ई०) कश्मीरियों के लिए वर्षों की परेशानियों के बाद एक वरदान सिद्ध हुआ। उसने झेलम के किनारे ५५ ग्राम विद्वान् ब्राह्मणों के लिए अग्रहार स्वीकृत किये; और साथ ही अपने आनुवंशिक स्थान परिहासपुर में 'आर्यदेश' (उत्तर भारत) के विद्यार्थियों के लिए एक मठ[1] बनवाया। यशस्कर की मृत्यु के उपरांत उसका बालक-पुत्र (९४८ ई०) में राजा बना; किंतु मंत्री पर्वगुप्त ने उसे मरवा दिया और (९४९ ई०) में गद्दी पर कब्ज़ा कर लिया। (९५० ई०) में पर्वगुप्त की मृत्यु हो गई और उसका बेटा क्षेमगुप्त उत्तराधिकारी बना। एक बार फिर से कश्मीर लालची और दुराचारी सम्राट् के अंतर्गत आया। उसने दिद्दा से विवाह किया जो लोहार के अधिनायक सिंहराज की बेटी और यशस्वी शाही राजा भीमपाल की नातिनी थी—और इस प्रकार कश्मीर के इतिहास का रास्ता बदल गया। दिद्दा से क्षेमगुप्त का संबंध हो जाने से कश्मीर लोहार-परिवार के शासन में आ गया जिसने कल्हण के समय तक और उसके बाद भी कश्मीर के साथ-साथ अपने मूल गृह-राज्य पर भी अपना अधिकार बनाए रखा। राजा अपनी पत्नी पर इतना आसक्त था कि लोग उसे मज़ाक में 'दिद्दाक्षेम'[2] कहते थे।

क्षेमगुप्त की मृत्यु के उपरांत दिद्दा ने पहले कार्यवाहक रानी के रूप में और फिर रानी बनकर शासन किया। शक्ति की लालसा से उसने २३ वर्षों तक कश्मीर पर कठोर शासन किया। यद्यपि वह निर्दयी, अविश्वासी और दुराचारी थी; उसमें राजनीतिज्ञ-सदृश चतुराई और प्रशासकीय योग्यता थी, मानो सौंदर्य और मस्तिष्क का संयोग हो। दिद्दा के प्रेमी-मंत्री तुंग (जिसे हम पहला प्रेमी-मंत्री नहीं कह सकते) को हटाने के लिए ब्राह्मणों ने प्रायोपवेश किया; किंतु उसकी धूर्त्ततापूर्ण नीतिवत्ता और घूस तथा तुंग के साहस की जीत हुई। तुंग ने राजपुरी के नरेश पृथ्वीपाल को, कश्मीर की सत्ता का उल्लंघन करने के कारण,

---

१. मठ यह सूचित करता है कि दसवीं सदी में भी कश्मीर और उत्तर भारतीय मैदानों के बीच सांस्कृतिक संबंध जारी थे।

२. क्षेमगुप्त के सिक्के, जिनमें से कुछ पर 'दि' अक्षर है, इस बात को मुद्रा-प्रमाण द्वारा पुष्ट करते हैं।

हराया और उपहार देने के लिए मजबूर किया। तुंग ने 'डमारों की महामारी को समाप्त कर दिया' जब उन्होंने दिद्दा के शासन के अंतिम वर्षों में उपद्रव किया।

१००३ ई० में मरने से पहले दिद्दा ने अपना राज्य लोहार के शासक अपने भाई उदयराज के पुत्र संग्रामराज को सौंप दिया। इस प्रकार कश्मीर का शासन शांतिपूर्वक एक नये वंश के हाथों में आ गया।

संग्रामराज के शासनकाल में, आनंदपाल के पुत्र शाहीनरेश त्रिलोचनपाल की सहायता के लिए प्रधानमंत्री तुंग ने गजनी के सुलतान महमूद के विरुद्ध अभियान का नेतृत्व किया। तुंग को कुछ छोटी-मोटी सफलताएँ मिलीं किंतु अंत में हारना पड़ा। तुंग पर निर्भर रहने के कारण राजा को बुरा लगता था और उसने राजा को मरवा डाला। डमारों और दरदों के एक छोटे-मोटे विद्रोह के बाद वह स्वयं भी अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहा और २६ वर्षों के शासन के बाद १०२५ ई० में स्वर्गवासी हुआ।

संग्रामराज का छोटा लड़का अनंत १०२८ ई० में गद्दी पर बैठा—अपने बड़े भाई हरिराज के २२ दिन के शासन के बाद जिसे महत्त्वाकांक्षिणी और व्यभिचारिणी राजमाता श्रीलेखा के द्वारा मरवा दिया गया था। उसने न केवल सामंतों के विद्रोह को शांत किया; अपितु दरदों और मुसलमानों के आक्रमण को भी सफलतापूर्वक बेकार कर दिया। उसकी पुण्यात्मा रानी सूर्यमती राजकार्य में प्रमुख भाग लेती थी। उसका प्रशासन कठोर और सक्षम सिद्ध हुआ। पत्नी से अभिभूत अनंत अपना अधिकांश समय ध्यान में बिताया करता था। सूर्यमती ने राजा को इस बात के लिए मना लिया कि वह अपने पुत्र कलश (१०६३ ई०) के लिए राजगद्दी छोड़ दे। गृहराज्य की संपन्नता के कारण कलश समीपवर्ती क्षेत्रों में अभियान कर सका—राजपुरी और उरुस पर अधिकार कर लिया गया। यद्यपि उसने कश्मीर के राज्य को बढ़ाया और मजबूत बनाया; फिर भी उसके अंतिम दिन उसके और ज्येष्ठ राजकुमार हर्ष के बीच संदेह की दीवार खड़ी हो जाने के कारण कटुतापूर्वक बीते। अपने छोटे बेटे उत्कर्ष को कश्मीर का शासक बनाने की इच्छा से हर्ष को बंदी बनाने के बाद १०८९ ई० में वह स्वर्गवासी हुआ।

हर्ष बंदीगृह से भागने में सफल हो गया और सिंहासन पर अधिकार कर लिया जो न्यायपूर्वक उसका ही था। राजा हर्ष के शासन का (१०८९-११०१ ई०) कल्हण ने विशद वर्णन किया है। असाधारण शूरवीर युवा हर्ष अनेक शास्त्रों में प्रवीण था। वह कई भाषाओं का ज्ञाता और कवि था। उसने अपने राज दरबार में नए तौर-तरीक़े शुरू किये और सहस्र-दीपशिखा-दीपिता राजसभा में विद्वानों और कवियों की गोष्ठियों में उपस्थित होकर विद्या को प्रोत्साहन दिया। उसकी सभा समीप और दूर के संगीतज्ञों, कवियों और विद्वानों की मंडलियों को आकृष्ट

करती थी। कल्हण कर्णाटक[1] धुनों और संगीत-वाद्यों का कश्मीर में प्रचलित किये जाने का उल्लेख करते हैं। विद्वानों और कवियों के प्रति हर्ष की दानशीलता से प्रभावित होकर, ऐसा कहते हैं, चालुक्यराज परमादि के प्रसिद्ध राजकवि बिल्हण ने इस बात का पश्चात्ताप किया था कि उसने कलश के अशांत शासन के समय कश्मीर छोड़ दिया था।

एक चतुर व योग्य प्रशासक, साथ ही एक उदार हृदय विद्या-संरक्षक हर्ष ने अपना शासन सही तरीक़े से प्रारंभ किया। अपने कर्मचारियों में अनुशासन की भावना भरते हुए उसने स्वयं राजकर्तव्यों को पूरा करने और ब्राह्मणों के संरक्षकत्व का नियमपूर्वक पालन करने का व्यक्तिगत उदाहरण उपस्थित किया। उसकी पटरानी वसंतलेखा उदारतापूर्वक दान करने में सहभागिनी होती थी।

हर्ष के अनेक सद्‌गुणों की प्रशंसा करते हुए, कल्हण उसकी असफलताओं और कमजोरियों पर भी उँगली रखते हैं। अद्‌भुत विरोधाभासों से संयुक्त हर्ष का कल्हण इस प्रकार संसार वर्णन करते हैं, "निर्दयता और सहृदयता, उदारता और लालच, जबर्दस्त हठ और प्रमत्त उदासीनता, चालाकी और विचारहीनता— ये और दूसरे बेमेल गुण हर्ष के रंग-बिरंगे जीवन में यथाक्रम प्रकट होते रहते थे।"

राजौरी के प्रधान को दबाने के लिए हर्ष ने एक योग्य सेनापति कंदर्प को भेजा। कंदर्प ने प्रधान संग्रामपाल को अपने अधीन कर लिया और उपहार उगाहा। ईर्ष्या से जले हुए शठ सभासदों ने कंदर्प को निष्कासित करवा दिया। राजमहल में और राज्य में विश्वासघात बढ़ गया। राजगद्दी पर अधिकार जताने वाले नज़दीकी व्यक्ति हर्ष के विरुद्ध षड्यंत्र रचने लगे जिसने उन्हें रास्ते से दूर हटवा दिया। सेना पर किए जाने वाले अतिशय व्यय से युक्त सैन्य क्रियाकलापों के कारण और हर्ष द्वारा स्वयं ख़र्चीले विलासों में लगे रहने के कारण (अंतःपुर में सभी जातियों की ३६० रानियाँ थीं, डोंब और चांडाल छोड़कर) वह आर्थिक संकट में फँस गया। नए-नए कष्टदायक कर लगाए गए। कल्हण की व्यंग्योक्ति है, "मैले पर भी विशेष कर लगाया गया"। हर्ष ने मंदिरों के छिपे हुए ख़जानों पर भी हाथ साफ़ किया। हर्ष की पहले की उदारता अब लालच में बदल गई और उसने संपूर्ण घाटी में मंदिरों की सोने व चाँदी की प्रतिमाएँ गलवा डालीं। ये मूर्तिभंजक 'अतिचार और अपने पिता की विधवा के साथ व्यभिचार उसके उन्मत्त मस्तिष्क के निश्चित सूचक थे'। १०९९ ई० में दुःखी व असंतुष्ट प्रजा पर प्लेग और विनाशकारी बाढ़ के रूप में नई विपत्तियाँ गिरीं। प्रजा का ध्यान हटाने के लिए हर्ष ने शक्तिशाली ज़मींदार डमारों पर आक्रमण कर दिया— कल्हण उन पर की गईं नृशंसताओं का बीभत्स वर्णन करते हैं।

१. हर्ष के अनेक उपलब्ध हस्ति-रूपांकित सिक्के समकालीन कर्णाटक-मुद्राओं की ओर इंगित करते हैं।

लोहार वंश की एक उपशाखा से उद्भूत उच्चल और सुस्सल नामक दो भाइयों के रूप में बदले का न्याय मंच पर अवतीर्ण हुआ। पागल राजा को हटाने के लिए डमारों और दूसरी विद्रोही शक्तियों ने उनका साथ दिया। निराशापूर्ण प्रतिकार के बाद हर्ष मारा गया। उसका सिर उच्चल के सामने लाया गया जिसने उसे जलवा दिया; जबकि भिखारी के समान नग्न उसके शरीर को एक दयालु लकड़हारे ने जलाया। (इसका चित्रण करने वाले कुछ पद्य 'कवि के रूप में कल्हण' नामक अध्याय में दिए गए हैं।)

राजतरंगिणी की सप्तम तरंग की अंतिम घटना हर्ष की मृत्यु है। (कल्हण के समय तक की शेष घटनाएँ इसके पहले के अध्याय 'कल्हण और उनका समय' में अवलोकित की जा चुकी हैं।)

राजतरंगिणी के लगभग अर्ध-भाग, आठवीं और अंतिम तरंग में कल्हण बारहवीं सदी के अर्धांश की उन घटनाओं का वर्णन करते हैं जो हर्ष के पतन और राजतरंगिणी की रचनातिथि के बीच घटीं। यह लंबा वर्णन, जो यदा-कदा भ्रांत है, इस लाभ से युक्त है कि इसमें कश्मीर के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक रूपों का प्रामाणिक समकालीन चित्र प्रस्तुत किया गया है।

विद्रोही डमार देश की शांति को भंग करते थे। गद्दी पर अधिकार जताने वाले उठते और गिरते थे। श्रीनगर की जनता एक निराशाजनक अवरोध में फँसी। सुस्सल के बेटे जयसिंह ने कश्मीर पर 'धूर्ततापूर्ण राजनीति और असंदिग्ध षड्यंत्र' के जरिए राज्य किया। राजतरंगिणी के अंतिम पद्यों में जयसिंह की रानी और उसकी संतति की स्तुति की गई है। तो हम ११४९-५० ई० जयसिंह के शासन के बाईसवें वर्ष में पहुँच जाते हैं। दक्षिण भारतीय सरिता गोदावरी की तेज़ धारा से अपनी राजतरंगिणी की तुलना करने वाले पद्य के साथ कल्हण अपना काव्य समाप्त करते हैं।

राजतरंगिणी से शिक्षा

एक बात जिसे हम बार-बार दुहरा सकते हैं वह यह है कि संपूर्ण भारतीय इतिहास के दृष्टिकोण से कल्हण की राजतरंगिणी महत्त्वहीन नहीं है। भारतीय इतिहास का अधिकांश भाग राज्यों के इतिहास से बना हुआ है। चूँकि किसी दूसरे प्रांतीय इतिहास के अत्यल्प विवरण ही उपलब्ध हैं; अतः कल्हण का इतिहास, इन राज्यों में से एक का विशद विवरण होने के कारण, शेष राज्यों के लिए एक नमूना बन जाता है।

कल्हण के अनुसार, इतिहास कुछ याद करने की चीज़ नहीं थी; अपितु लोगों के लिए जीवन को समझने की चीज थी, क्योंकि यह मानवीय संबंधों के बहुविध, जटिल रूपों से संबद्ध है। वैदिक युग के आरंभिक काल में राजा का चुनाव होता था। बाद में वह आनुवंशिक हो गया; राज्य का वर्तमान और भविष्य मुख्य रूप से सम्राट् के व्यक्तित्व पर निर्भर रहने लगा। प्रायः ऐसी कोई भी राजनीतिक जनसभा नहीं थी जो राज्य के आकार को गढ़ सके। स्वेच्छाचारी राजाओं के कामों को सामान्यजन धैर्य धारण करके देखते रहते थे। सामंती स्वार्थ के कारण विप्लव होते थे; ये ही जनविद्रोह थे। ललितादित्य और उसके समान शक्तिशाली सम्राटों के अधीन लोगों का जो जीवन था उसे मुश्किल से ही दासवृत्ति से अलग माना जा सकता है। जबकि धनवान् लोग माँस के पकवान और पुष्पसुरभित शीतल शराब का सेवन करते थे, सामान्य-जन बहुत भाग्यशाली थे यदि उन्हें प्रतिदिन दो बार चावल और सब्ज़ी भी खाने को मिल जाती। कल्हण की राजतरंगिणी से ऐसी कई उल्लेखनीय शिक्षाएँ मिल सकती हैं 'जिसमें प्राचीनकाल के अनंत व्यापार सन्निहित हैं'।

राजनीतिक सूत्र और कूटनीतिक मर्यादाएँ स्पष्ट करने के लिए ऐतिहासिक घटनाएँ प्रस्तुत की गई हैं। वे अंश विशेष उल्लेखनीय हैं जिनमें कल्हण कश्मीर में व्यवहार्य राज्य के सिद्धांतों का संक्षेप में वर्णन करते हैं। इसे राजा 'ललितादित्य की कश्मीरी प्रशासन-संहिता' के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन सिद्धांतों का

मैकियावेलियन रंग भारतीय नीति शास्त्रों जैसा है। फिर भी कल्हण के सूत्र वाक्यों में एक विशिष्ट स्थानीय रंग है जो उन्हें एक ऐतिहासिक दृष्टिकोण से मूल्यवान् बना देता है।

सबसे पहला सूत्र ही विशिष्ट रूप से कश्मीरी है। चूंकि अपनी संकीर्ण भौगोलिक सीमाओं के कारण कश्मीर के कोई विदेशी शत्रु नहीं थे, आंतरिक विग्रह रोकने के लिए निश्चित क़दम उठाने हेतु शासकों को सचेत किया गया है। घाटी को घेरने वाले पहाड़ों के निवासियों को 'अपराध न होने पर भी दंड देना चाहिए'। कल्हड ख़स और दूसरे पहाड़ी क़बीलों के बारे में सोच रहे थे जो निर्बल प्रशासन के समय कश्मीरियों को लूटते थे। इसी प्रकार उन्होंने राजा को यह सलाह दी कि ग्रामीणों के पास एक वर्ष से अधिक का अन्न-भंडार न छोड़ा जाए ताकि डमार-प्रमुख ज़मींदारों की शक्ति कुंठित रहे। इन ज़मींदारों के बार-बार होने वाले विद्रोहों के कारण कल्हण के समय और उनके पहले भी गृहयुद्ध हुए। वे उनके प्रति निश्चित अरुचि प्रकट करते हैं और उन्हें बार-बार दस्यु कहते हैं। कल्हण कई बार लोगों की राजनीतिक असंगतियों का उल्लेख करते हैं जो—चाहे बड़े हों या छोटे—हर बदलने वाले शासन के साथ अपना रंग बदल देते थे। आलसी, अप्रभावित शहरी भीड़ के विशद विवरण मिलते हैं जो राजवंशीय परिवर्तनों के प्रति बिलकुल उदासीन रहती थी। अपने देशवासियों के प्रति कल्हण की स-सार टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं जो तीक्ष्ण, सूक्ष्मदर्शी और समीक्षात्मक प्रतिभावाला व्यक्ति ही कर सकता है। राजतरंगिणी में जहाँ-तहाँ फैली हुई इन टिप्पणियों से काफ़ी कुछ सीखा जा सकता है।

कल्हण ऐतिहासिक घटनाओं का इस प्रकार मूल्यांकन कर सके जिससे उनके द्वारा भावी पीढ़ियों को शिक्षाएँ मिल सकें। जब ऊपरी किशन गंगा घाटी में जयसिंह ने अभियान किया, तब कल्हण यह टिप्पणी करते हैं कि शत्रु की ताक़त को पूरी तरह जाने बिना योजना बनाने से असफलता अपरिहार्य है। जयसिंह के विद्रोही विरोधियों के द्वारा की गई नीति-संबंधी भूलों की वे समीक्षा करते हैं और यह बतलाते हैं कि इन भूलों के कारण राजा को कितनी सीमा तक सफलता मिली।

कश्मीर के इतिहास से एक और उल्लेखनीय शिक्षा मिलती है, वह है दरबारी षड्यंत्रों और रानियों की परस्पर ईर्ष्या का सम्राट् तथा जन-साधारण पर पड़ने वाला दूषित प्रभाव। ऐसा लगता है मानो कि कल्हण दरबार का बुद्धिमत्तापूर्ण निरीक्षण करते थे और जो कुछ देखते थे उसका विवरण लिख लेते थे, इस आशा में कि उनके निरीक्षणों से भावी पीढ़ियाँ लाभान्वित होंगी। आर० सी०

मजूमदार[1] के शब्दों में, "कश्मीर के राजाओं और रानियों की अविश्वसनीय विलासिता, जिसके कारण राज्य पर अकथनीय विपत्तियाँ आई, उस युग के तौर-तरीक़ों और आचार-विचारों पर एक अस्वाभाविक प्रकाश डालती है एवं हमारे प्राचीन शासकों के हितैषी निरंकुश राज्य के प्रिय स्वप्न को एक बर्बर धक्का देती है।"

वही लेखक यह भी कहता है, "किसी भी राजा के कार्यों को विलक्षित करने वाली मातृभूमि के रूप में भारत की कल्पना शायद ही हो।" यह दृष्टिकोण बहुत कुछ विवादास्पद है। कश्मीर की पृथक्कृत भौगोलिक स्थिति ने कश्मीरियों के तौर-तरीक़ों और प्रशासन को एक घिरावट का रूप दे दिया था। यह सिद्ध करने के लिए कल्हण की राजतरंगिणी में काफ़ी कुछ है कि कश्मीरियों ने देश के जीवन-प्रवाह में हिस्सा लिया था। उदाहरणार्थ, कल्हण का इतिहास शोधकर्ता को उस सती-प्रथा के विषय में गवेषणा करने में मदद करता है जो शेष भारत के समान लंबे समय तक कश्मीर में प्रचलित रही। यह प्रथा सीथो-तातार रिवाज़ से शुरू हुई। सीथो-तातार अधिनायक के अधीनस्थ स्त्री-पुरुष उसकी मृत्यु के बाद आत्म-हत्या कर लेते थे। वीरता के युग में यह प्रथा कश्मीर में, और भारत के शेष भागों में, बनी रही और केवल राजपरिवार तक ही सीमित नहीं थी। "कश्मीर घाटी में सती-प्रथा इतनी बद्धमूल थी कि माताएँ, बहनें और दूसरे नज़दीकी रिश्तेदार तक अपने प्रिय वियुक्त के साथ अपने-आपको जला डालते थे", कल्हण के प्रमाण पर एस० सी० राय[2] कहते हैं।

सब मिलाकर भारतीय राज्यों को आलेखित करने वाला कालिमामय चित्र दूसरी तरफ़ खुशदिल रंगों से रँगा हुआ भी था; आदिम राजनीतिक घटनाओं के बावजूद जन-साधारण और उनके सम्राट् भी—अच्छे, बुरे, तटस्थ—संगीत और नृत्य जैसी ललित कलाओं को विकसित करते रहे—कला और वास्तुशिल्प भी अपने सर्वोत्तम रूप में विकासमान थे। धर्म, दर्शन और विज्ञान की भी अनेक शाखाओं में उल्लेखनीय प्रगति दृष्टव्य थी। किंतु कल्हण के निरीक्षण यह अभिव्यंजित करते प्रतीत होते हैं कि महान् लोगों की उपलब्धियाँ समाज की कुछ प्राणभूत आवश्यकताओं के उत्तरस्वरूप थीं; विभिन्न क्षेत्रों में मानवीय प्रयासों को उच्च सफलता मिली क्योंकि समय अनुकूल था।

वाक्पुष्टा, दिद्दा, सुगमला और सूर्यमती तथा कई छोटी-मोटी रानियों के जीवन-क्रम यह प्रदर्शित करते हैं कि सार्वजनिक जीवन में स्त्रियों को समान अवसर प्राप्त थे। कल्हण (और दूसरे इतिहासकारों) ने प्राचीन भारतीय स्त्रियों के पांडित्य और विद्वत्ता का प्रचुर शब्दों में संकेत दिया है। स्त्रियों का परदे में

१. एंशेंट इंडिया, पृ० ३८६
२. अर्ली हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ़ कश्मीर, १९६९, पृ० ११६।

रहना या पृथक्करण अज्ञात था; क्योंकि स्त्रियाँ घरेलू पृष्ठभूमि से राजनीतिक मंच पर आ गई थीं। रणजित् सीताराम पंडित-कृत राजतरंगिणी के अनुवाद की प्रस्तावना में जवाहरलाल नेहरू के अनुसार—'कल्हण के ग्रंथ में स्त्रियाँ एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हुई प्रतीत होती हैं, न केवल परदे के पीछे बल्कि सभाओं और मैदानों में नेता व सैनिक के रूप में भी।' रानियों के अपने स्वयं के कोष थे और वे प्रशासन में सक्रिय भाग लेती थीं। किसी भी नागरिक या सैनिक पद पर कार्य करने के लिए लिंग या जाति (या जन्म) की कोई रुकावट नहीं थी। 'नर्तकियाँ' तक राजनीति में आक्रामक भाग लेती थीं। "कश्मीर एक ऐसी भूमि है जिसे विप्लव में आनंद आता है...," कल्हण लिखते हैं, "इस देश में देवदासियाँ भी राजा के विरुद्ध विद्रोह में आनंद लेती हैं।"

कर्कोट-उत्तर काल में ज़मीन के बढ़ते हुए महत्त्व पर जोर दिया गया है। किंतु ज़मीन जोतनेवालों की ठीक-ठीक जीवनदशा के विषय में राजतरंगिणी मौन है; इस विषय में हम केवल जमींदार डमारों द्वारा उगाहे गए लगान से ही कुछ अनुमान लगा सकते हैं। सैन्यजाति तंत्रियों और डमारों के प्रति—जो अशांति के समय स्वयं राजा बनाने वाले बन जाते थे—कल्हण अपनी अरुचि कठिनाई से छिपाते हैं।

अस्पृश्यता कश्मीर में अज्ञात थी—वह संभवतः बौद्ध-प्रभाव के समय प्रायः अस्तित्व-हीन हो चुकी थी। राजा चक्रवर्मा ने एक 'अछूत' डोंब स्त्री से विवाह किया था। किंतु डोंब सही में अछूत नहीं थे जैसा कि भारत के दूसरे भागों में जाना जाता है। कल्हण लिखते हैं कि डोंब अच्छे संगीतज्ञ थे। एक दूसरी उल्लिखित निम्न जाति चांडाल है—इनमें से कुछ शाही अंगरक्षक थे। राजतरंगिणी से यह भी प्रकट होता है कि शूरतम सेनापतियों में कुछ ब्राह्मण थे—बाद में मराठों के समय यह अवस्था फिर आई। यह बात ध्यान देने योग्य है कि, शेष भारत में सर्वसामान्य, ब्राह्मण और निम्न जाति के मध्य की जातियाँ कश्मीर में अज्ञात थीं।

राजतरंगिणी कश्मीर के राजाओं के शासनों के विवरण के अलावा भी काफ़ी कुछ है। कल्हण समकालीन सामाजिक और राजनीतिक जीवन का एक प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करते हैं। कश्मीर और समीपवर्ती क्षेत्रों के अतीत के विषय में राजतरंगिणी एक बृहद् सूचना-कोष है। कल्हण के बाद के कश्मीरी इतिहास की चित्रित धारा को समझने में भी इससे सहायता मिलती है। कल्हण के काल और कश्मीर पर मुग़ल अधिकार (१५८८ ई०) के बीच का समय राजतरंगिणी के अंतिम भाग में विद्यमान ऐतिहासिक परिस्थितियों और प्रवृत्तियों की निरंतरता सूचित करता है।

राजतरंगिणी के उपदेशात्मक और वर्णनात्मक पद्य कल्हण की काव्यशैली

के एक विशिष्ट अंग हैं। अपने स्रोतों के अनिश्चयात्मक आभास के बावजूद, कल्हण अपने विषय में जो कुछ कहना चाहते हैं उसे वे विनम्र शब्दों में इन पद्यों में व्यक्त करते हैं :

> यद्यपि दूसरे पुरालेखों द्वारा लिखे गए विषय पर मैं पुनः लिख रहा हूँ; गुणी जनों को कारण सुने बिना दूसरी ओर मुँह नहीं मोड़ लेना चाहिए।
>
> वहाँ कैसी प्रतिभा प्रदर्शित हो सकती है; जहाँ आधुनिक व्यक्ति अपने ग्रंथों में उन विवरणों को संगृहीत करते हैं जो दिवंगत व्यक्तियों ने अपने समकालीन राजाओं के इतिहास के विषय में लिखे थे ! अतः—हर प्रकार से उपेक्षित विषय—अतीत के तथ्यों के इस वर्णन में मेरा प्रयास केवल संग्रह करने का ही रहा है।

उनके ग्रंथ का नीतिपरक उपदेश है, "संपूर्ण सांसारिक समृद्धि क्षणस्थायी है; नीति से हटने का प्रतिफल मिलता ही है।" उनके ग्रंथ की आठ तरंगों में से चार का अंत इसी प्रकार की उक्तियों से होता है। राजतरंगिणी की अंतिम तरंग में उनका गहन विचार है, "छाया का मार्ग अनियंत्रित होता है, जबकि धूप प्रकृति-वश शतधा, सूक्ष्मता से अनुसृत होती है। इस प्रकार दुःख सुख से अलग है; किंतु सुख की मर्यादा अनंत दुःख की चोट और दर्दों से प्रतिबद्ध है।"

कल्हण भाग्यवादी नहीं हैं; वे, टॉमस हार्डी के समान, 'परिस्थिति की विकटता' में विश्वास नहीं करते। बौद्धमत के अनुसार, वे कर्म में दृढ़विश्वास रखते हैं और यह संपूर्ण राजतरंगिणी में अग्रगामी है। यह एक उल्लेखनीय विशेषता है क्योंकि उनके समय कश्मीर में शैवमत ने बौद्धमत की परिपूर्ति कर दी थी। कल्हण जानते थे कि हर चीज़ काल के साथ मुरझा जाती है और समयानुसार नष्ट हो जाती है; केवल कलाकार ही चंचल रूप को पकड़ सकता है और अमरता के साँचे में ढाल सकता है।

कल्हण चाहते हैं कि पाठक उनके साथ धीरज रखे। वे यह स्पष्ट कर देते हैं कि वे किसी समकालीन महाराजा के चापलूस नहीं हैं। उन्होंने जो कुछ भी संकलित किया या लिखा है उसकी तुलनात्मक वस्त्वात्मकता पर निर्भर रहा जा सकता है और इसलिए इतिहास की धारा से उन्होंने जो कुछ सीखा है उसका लाभ पाठक भी उठा सकता है।

पश्चात्वर्ती संस्कृत पुरालेखों के स्वल्प ऐतिहासिक विवरणों के अधिक अच्छे स्पष्टीकरण हेतु हमें कल्हण की राजतरंगिणी की सामान्यतः ठीक-ठीक सूचना को धन्यवाद देना चाहिए। इस प्रकार महान् कवि-इतिहासकार कल्हण ने न केवल कश्मीर की प्राचीन संस्कृति और इतिहास को विस्तृत होने से बचाया; बल्कि इतिहास के विद्यार्थी को पुरालेखकों के विशृंखल विवरणों को संश्लेषित करने में

भी सहायता प्रदान की। और, अंतिमतः, कश्मीर के इतिहास का विद्यार्थी अतीत के साथ अधिक संतोषजनक रूप से बौद्धिक वार्तालाप कर सकता है—और उस काल से नैतिक तथा वास्तविक शिक्षाएँ ले सकता है—जो कि भारत के किसी अन्य राज्य के विषय में अपेक्षाकृत कम संभव है।

अन्य पुरालेखक

कल्हण की राजतरंगिणी कश्मीर और समीपवर्ती क्षेत्रों के अतीत से संबंधित सूचना का एक खजाना है। यह कल्हण के समय के बाद के कश्मीरी इतिहास की चित्रित धारा को समझने में भी सहायता प्रदान करती है। कवि-इतिहासकार कल्हण ने एक नमूना तैयार किया जिसका उत्तरवर्ती इतिहासकारों ने भी अनुकरण किया जिनमें से अधिकांश उनके समान कवि और विद्वान् थे।

पंडित जोनराज कल्हण की राजतरंगिणी को अपने समय तक लाए। एक सम्मानित इतिहासकार, जिनका जन्म संभवत: १३८३ ई० में हुआ था, जोनराज (मूल नाम ज्योत्स्नाकर) ने इस पुरालेख को १४५९ ई० तक संस्कृत-पद्य में पूरा किया। उदार मुस्लिम सम्राट् सुल्तान जैनुल्-अबीदीन (१४२०-१४७० ई०) का ध्यान उनकी ओर उनकी विद्वत्ता के कारण गया। सुल्तान ने उनसे कल्हण की राजतरंगिणी को उनके समय तक लाने के लिए कहा। इस नवीन कृति को 'द्वितीय राजतरंगिणी' कहा गया।

जोनराज की राजतरंगिणी का अधिकांश भाग उत्तरवर्ती हिंदू शासकों (अर्थात् कल्हण के बाद के) जयसिंह से रानी कोटा तक शासनों से संबंधित है। ऐसा प्रतीत होता है कि जोनराज की विद्वत्ता—उन्होंने तीन विद्वत्तापूर्ण भाष्य लिखे—एक इतिहासकार के रूप में उनकी कुशलता और उपलब्धि से अधिक भारी थी। जैसा कि श्रीकंठ कौल ने इंगित किया है, "शैली की दुरूहता एक ऐसा मुख्य दोष है जो ऐतिहासिक वर्णन को क्षीण कर देता है। पुरालेखक की पदावली कभी-कभी उस ठीक-ठीक सूचना को अभिव्यक्त नहीं करती जो सही ऐतिहासिक निष्कर्ष निकालने के लिए आवश्यक है।" कवि-इतिहासकार की शैली से संबंधित कौल की आलोचना के अंत में संहारक टिप्पणी है, "जोनराज के संकुचित कथन चकरा देते हैं।" एक अधिशासी सम्राट् की आज्ञा से लिखा गया इतिहास कई स्थानों पर दरबारी पुरालेख जैसा लगता है। संभवत: चूँकि स्रोतों से स्वल्प सूचना उपलब्ध थी, आरंभिक राजाओं के शासनों के विषय में संक्षेप में ही लिख

दिया गया है—महत्त्वपूर्ण घटनाओं को कभी-कभी एक पद्य में ही कह दिया गया है और अन्यों की पूरी तरह उपेक्षा कर दी गई है। फिर भी इन दोषों के बावजूद जोनराज की राजतरंगिणी[1] ने अपना महत्त्व बनाए रखा है। ११५० ई० से १४५९ ई० (जोनराज के मृत्युवर्ष) तक की सूचना का यह पूर्वतम उपलब्ध स्रोत है। कालगणना, जहाँ भी दी गई है, सही है; और भूमिरचना सब मिलाकर विश्वसनीय है। सामान्यतः यह काफ़ी वस्त्वात्मक ऐतिहासिक पुरालेख है जो कल्हण के पुरालेख के समान विशिष्ट काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

जोनराज के शिष्य श्रीवर ने (जो स्वयं सुल्तान जैनुल-अबीदीन के विश्वास-पात्र थे) पुरालेख को आगे बढ़ाया जो 'जैन राजतरंगिणी' नाम से जाना गया और जिसमें चार अध्यायों में १४५९ ई० से १४८६ ई० तक की घटनाएँ वर्णित हैं। जोनराज के समान विद्वान्-कवि होने के साथ-साथ वह संगीतज्ञ भी था। अपने गुरु की शैली का अनुकरण करने की अपेक्षा श्रीवर ने पूरी तरह कल्हण का अनुकरण किया, यहाँ तक कि उसके द्वारा किया गया जोनराज के पुरालेख का विस्तार मूल राजतरंगिणी जैसा लगता है।

समकालीन जीवन के विषय में मूल्यवान् विवरण बतलाने के कारण उसके चार अध्याय महत्त्वपूर्ण हैं। उसके इतिहास से हमें एक अच्छा फायदा यह है कि महत्त्वपूर्ण स्थानों के नामों में जो परिवर्तन हो रहे थे उनकी सूचना हमें मिलती है। उदाहरणार्थ, ललितादित्य के प्रसिद्ध मंदिर के समीप स्थित, मार्तंड के तीर्थ को भवन के नाम से उल्लिखित किया गया है जिस नाम से यह अभी भी जाना जाता है। अपने काम में लगा हुआ श्रीवर सुल्तान जैनुल्-अबीदीन और उसके उत्तराधिकारी सुल्तान हसन शाह (१४७२-८४ ई०) के परिवर्तन के समय भी बचा रहा। वास्तव में, सुल्तान हसन शाह ने उसे संगीत विभाग का अध्यक्ष बनाया, जो सुल्तान द्वारा पारंपरिक रूप से संरक्षित था। आगामी सुल्तान मुहम्मद शाह (१४८४-८६ ई०) ने भी श्रीवर को राजकीय संरक्षण प्रदान

---

१. डॉ० जी० एम० डी० सूफ़ी कशिर में यह इंगित करते हैं कि जे० सी० दत्त द्वारा प्रयुक्त (१८३५ का कलकत्ता संस्करण) जोनराज के संस्कृत-पाठ में ९८० श्लोक थे; जब कि डा० पीटरसन द्वारा प्रयुक्त (१८९६ का बम्बई संस्करण) जोनराज के संस्कृत-पाठ में १३३४ श्लोक थे। डा० सूफी ने आगे लिखा है, "साथ ही, प्राज्यभट्ट की राजावलि—नामक वास्तविक कृति की ओर ध्यान नहीं दिया गया है और श्री दत्त, डा० पीटर पीटर्सन और सर आरेल स्टीन ने शुक की राजतरंगिणी को भूल से प्राज्यभट्ट और शुक की संयुक्त कृति समझ लिया है; स्पष्टतः सुल्तान फतह शाह द्वारा कश्मीर की गद्दी पर तीन बार बैठने से उत्पन्न ग़लतफ़हमी के कारण। जब श्रीवर ने अपना पुरालेख समाप्त किया, तब फतह शाह पहली बार कश्मीर पर शासन कर रहा था। जब शुक ने अपना पुरालेख प्रारंभ किया, तब फतह शाह फिर से सुल्तान बना था। क्योंकि वही शासक दुबारा शासन कर रहा था; इन तीनों विद्वानों की शृंखला अविच्छिन्न प्रतीत होती है।

किया।

यद्यपि तीस वर्षों से कम समय (१४५६-८६ ई०) को ही लिया गया है, श्रीवर का वर्णन काफ़ी विस्तारात्मक है; एवं वर्णन का सामान्य स्तर जोनराज के पुरालेख से बेहतर माना गया है। तथापि स्टीन[1] ने श्रीवर को 'कल्हण का नकलची' कहा है और आगे लिखा है, "उसका पाठ अधिकांशत: मौलिक रचना की अपेक्षा राजतरंगिणी के एक अध्याय जैसा मालूम पड़ता है। जोनराज के समान उसका वर्णन भी दरबारी पुरालेखक जैसा है।..." तथापि स्टीन श्रीवर के पुरालेख का उचित मूल्यांकन भी करते हैं, "फिर भी यह महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें वर्णित तीस वर्षों के काल के लिए यही एक समकालीन स्रोत है।"

श्रीवर के पुरालेख को पंडित प्राज्यभट्ट ने राजावलि-शीर्षक से आगे बढ़ाया। उन्होंने १४८६ ई० से १५१३-१४ ई० तक के २७ वर्षों तक का इतिहास लिखा जब सुल्तान फतह शाह और सुल्तान मुहम्मद शाह दो बार एक-दूसरे को हटाकर गद्दी पर बैठे। इन शासनों के विवरणों ने कुछ गड़बड़ी पैदा कर दी है; यद्यपि श्रीवर के शिष्य शुक[2] ने अकबर के द्वारा १५८६ ई० में घाटी पर अधिकार किये जाने के बाद राजावलि को पूरा किया और कल्हण के प्रसिद्ध शीर्षक के अनुकरण पर अपने पुरालेख का भी नाम राजतरंगिणी रखा। प्राज्यभट्ट और शुक के पुरालेखों में नगरों और दूसरे स्थानों के पुराने नामों का नए नामों में बदला जाना अधिक स्पष्ट है (इनमें से कुछ आधुनिक नामों के बहुत नज़दीक हैं)। आर० के० परमू[3] का यह मत है कि प्राज्यभट्ट की "मूल कृति खो गई है और हमारे पास जो है वह उनके उत्तराधिकारी शुक के द्वारा ५० पद्यों में किया गया सारांश है।" शुक के विवरण में अनियोजित और प्राय: कालक्रमविहीन होने का दोष है, और उसका भूगोल भी हमेशा सही नहीं है।

एक दूसरी कृति भी है जिसमें राजतरंगिणी की परंपरा को आगे बढ़ाया गया है। इसका नाम है लोकप्रकाश और ऐसा विश्वास किया जाता है कि इसकी रचना क्षेमेंद्र ने ११वीं सदी में प्रारंभ की थी। इसके दूसरे अध्याय में शाहजहाँ का उल्लेख यह इंगित करता है कि इसका रचनाकाल १७वीं सदी भी हो सकता है। इस बात की पुष्टि इसकी पदावली से भी होती है जिसमें संस्कृत और फारसी की मिलावट व कश्मीरी का छिड़काव है। फिर भी इस पुरालेख में एक उल्लेखनीय विशेषता है—राजनीतिक-राजवंशीय आख्यान कम हैं और प्रशासनिक, सामा-

१. स्टीन एम० ए०; क्रानिकल आफ दि किंग्ज़ आफ कश्मीर, राजतरंगिणी का इंग्लिश अनुवाद।

२. देखिये 'किंग्ज़ आफ कश्मीर—३'; जे० सी० दत्त कृत जोनराज; श्रीवर और शुक की राजतरंगिणियों का इंग्लिश-अनुवाद; कलकत्ता, १८९८।

३. 'हिस्ट्री आफ मुस्लिम रूल इन कश्मीर १३२०-१८१९'; नई दिल्ली १९६९।

जिक तथा आर्थिक विषयों से संबंधित सूचना अधिक है।

कल्हण की राजतरंगिणी की तुलना में ये बाद के पुरालेख साहित्यिक प्रबंध के रूप में निश्चयतः हीन हैं। इनके मूल्य-निर्धारण में सब मिलाकर यह कह सकते हैं कि, व्यक्तिगत कमियों के बावजूद, इन्होंने इतिहास लिखने की कल्हण की पद्धति में काफ़ी सुधार किया। उनके द्वारा उस परिवर्तन काल का काफ़ी प्रामाणिक विवरण दिया गया है जिस समय कश्मीर का शासन हिंदुओं के हाथ से निकलकर मुस्लिम हाथों में आया। इस प्रकार 'ये कश्मीरियों के समकालीन जीवन पर प्रकाश डालते हैं और उन कठिनाइयों और यातनाओं का विवरण देते हैं जो अकबर की विजय से पूर्व २॥ सदियों तक, संक्षिप्त अंतरालों सहित, चलती रहीं।'[1] समकालीन घटनाओं के उनके विवरण सब मिलाकर सही हैं, यद्यपि उनके दृष्टिकोण अक्सर उनके आख्यानों को अनुरंजित कर देते हैं। जैसा कि जोगेशचंद्र दत्त कहते हैं, "यह उल्लेख करना ज़रूरी है कि यद्यपि, संबद्ध प्रदेश के किसी दूसरे इतिहास के अभाव में, इन लेखकों की रचनाएँ ऐतिहासिक दृष्टिकोण से मूल्यवान् हैं; तथापि विभिन्न व्यक्तियों और घटनाओं के उनके मूल्यांकन को हम बिना हिचकिचाए स्वीकार नहीं कर सकते जब हम यह याद करते हैं कि वे, एक प्रकार से, दरबारी पंडित थे और अपनी सांसारिक उपलब्धियों के लिए उन राजाओं की मुस्कराट पर निर्भर थे जिनके विवरण उन्होंने लिखे।'[2]

मुस्लिम शासन प्रारंभ होने के लगभग दो सदी बाद तक संस्कृत राजकार्य की भाषा बनी रही। जैसे-जैसे मुस्लिम-सम्राट् फारसी भाषा (और साहित्य) को अधिकाधिक संरक्षण देने लगे, वैसे-वैसे संस्कृत में घटनाओं के अभिलेख की प्रथा क्रमशः समाप्त हो गई। अत्यंत लचीलेपन के साथ कश्मीरी विद्वानों ने अपने को इस परिवर्तन के अनुकूल ढाल लिया और फारसी में इतिहास लिखने लगे।

सुल्तान जैनुल्-अबीदीन ने राजतरंगिणी को उसके मूल संस्कृत पद्य-रूप में तो आगे बढ़वाया ही; साथ ही मुल्ला अहमद द्वारा उसका फ़ारसी में अनुवाद भी करवाया। अनुवादक का चुनाव बहुत ही योग्य था; मुल्ला अहमद स्वयं एक प्रमुख विद्वान् और एक विख्यात कवि व इतिहासकार थे। बहरुल् अस्मर (कथा-समुद्र) नामक यह अनुवाद उन्होंने संभवतः अधूरा छोड़ा था, और उसे पूरा किया था (अकबर के शासनकाल में) अब्दुल कादिर बदायूँनी ने जिसने उसे सम्राट् की इच्छानुसार बोल-चाल की फ़ारसी में संशोधित किया। इस समय कोई भी संस्करण उपलब्ध नहीं है; किंतु मुल्ला अहमद का इतिहास ही मालिक हैदर 'चौदुर' की कृति का आधार बना।

कल्हण की राजतरंगिणी की ही प्रकृति के अनुसार, मलिक हैदर ने फ़ारसी में

१. बमजई पी० एन० कौल; 'ए हिस्ट्री आफ कश्मीर'; १९६२।
२. 'किंग्ज आफ कश्मीर' (का आमुख), भाग ३।

कश्मीर का वृत्तांत अभिलेखित किया—प्रारंभिक युग से लेकर अपने समय तक, अर्थात् जहाँगीर के समय तक; बादशाह के शासनकाल के १२वें साल में वृत्तांत को समाप्त करते हुए। जो बात इस वृत्तांत 'तवारीखे-कश्मीर' को समकालीन घटनाओं का रुचिकर दर्पण बनाती है वह यह है कि मलिक हैदर तत्कालीन घटनाओं के व्यक्तिगत संपर्क में थे—कल्हण की अपेक्षा वे अधिक प्रत्यक्ष रूप में घुले-मिले थे। हैदर और उनके भाई मलिक अली ने शेर अफ़गन ख़ाँ की विधवा मेहरुन्निसा को बचाया जो बाद में नूरजहाँ बनी। कृतज्ञतास्वरूप उसने जहाँगीर से मलिक हैदर की सिफ़ारिश की; जिन्हें बादशाह ने ख़िताब दिये और कश्मीर के शासन का अधिकार-शुल्क भी। वे पारितोषिक-योग्य थे क्योंकि वे शिल्पी भी थे और उन्होंने जामा-मस्जिद तथा अन्य मस्जिदों को पुर्नानिमित किया। मलिक हैदर का उपनाम 'चौदुर' श्रीनगर के दक्षिण में १७ कि०मी० पर स्थित उनके गाँव से पड़ा—जिसका मलिक के मूलग्राम के रूप में जहाँगीर ने अपने संस्मरण 'तुजुके-जहाँगीर' में उल्लेख किया है। एक रुचिकर बात यह है कि मलिक हैदर, अबुल फ़ज़ल, और अन्यों के कश्मीरी वृत्तांत स्पष्टतः राजतरंगिणी पर आधारित हैं और अधिकांशतः पुराख्यानों व अद्भुत कथाओं से संबंधित किंवदंतियों की पुनरुक्ति करते हैं। मलिक हैदर ने तो कल्हण की आरंभिक हिंदू राजाओं से संबंधित कहानियों को अलंकृत भी कर दिया है। दूसरी तरफ़, लोहार-वंश इ० संबंधी कल्हण के विवरण के लिए उन्होंने कुछ चुने हुए पृष्ठ ही रखे हैं जो ज़्यादा ऐतिहासिक थे।

तवारीखे-कश्मीर नाम से ही एक दूसरा पुरालेख हसन अली कश्मीरी ने लिखा। यह अपेक्षाकृत संक्षिप्त कृति थी; प्राचीन काल से लेकर १६१६ ई० तक की घटनाओं को अभिलेखित करते हुए इसमें हसन शाह के शासन के अंत तक सुल्तानों के अधीन कश्मीर का विस्तृत विवरण दिया गया था। कल्हण की कवि-इतिहासकार परंपरा चलती रही और (फ़ारसी उपनाम अज़ीज रखने वाले) नारायण कौल अज़ीज, एक कवि और फ़ारसी साहित्यिक, ने हैदर मलिक का अनुसरण कर १७१०ई० में अपना तवारीखे-कश्मीर लिखा जिसमें सुल्तानों और आरंभिक मुग़लों का काफ़ी वास्तविक चित्रण है। किंतु अधिकांश आख्यान हैदर मलिक के पुरालेख पर आधारित है।

अनेक कृतियों के लेखक एक और कवि, जिन्होंने इतिहासकार की कठिन कला में अपना कौशल बतलाया, मुहम्मद आज़म कौल थे जो पश्चात्वर्ती मुग़लों के समय श्रीनगर में रहते थे। उनका पुरालेख 'वाक़्याते-कश्मीर' (कश्मीर की घटनाएँ) १७४६ ई० में पूर्ण हुआ। ११ वर्षों के सतत परिश्रम के फल इस पुरालेख में मुख्यतः पूर्ववर्ती कृतियों का सारांश था किंतु इसमें तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक प्रवृत्तियों पर विशेष प्रकाश डाला गया था। ख्वाज़ा

मुहम्मद आज़म का, उनकी साहित्यिक उपलब्धियों के साथ-साथ, संत के रूप में भी सम्मान किया जाता था। १७६५ ई० में उनकी मृत्यु के उपरांत उनके बेटे ख़्वाजा मुहम्मद असलम ने, कृति को आगे बढ़ाते हुए, गौहरे-आलम (संसार के रत्न) लिखा।

१६वीं सदी में पहुँचकर हमें एक और कश्मीरी कवि-इतिहासकार पंडित बीरबल कचरू मिलते हैं जो एक प्रसिद्ध फ़ारसी विद्वान् भी थे और जिन्होंने १८३५ ई० में द्वितीय डोगरा महाराजा रणजित् सिंह के शासनकाल में 'मुख्तसर तारीख़े-कश्मीर' (कश्मीर का संक्षिप्त इतिहास) लिखा। कश्मीर के चित्रित इतिहास के मुग़ल और अफ़गान कालों का विस्तार से वर्णन करते हुए कचरू ने, कल्हण के समान, लोगों की आर्थिक दशा का विवरण दिया। यद्यपि उन्होंने हिंदुओं की परंपराओं और सामाजिक आचार-विचारों पर प्रकाश डाला; उनके द्वारा किया गया, उस युग का मूल्यांकन इतिहासकार के लिए बहुत कीमती है। फिर भी, कुछ क्षम्य अतिशयोक्तियाँ और इतिहास-बाह्य कथन हैं।

संस्कृत-साहित्य में कश्मीर के विषय में कुछ अधिक नहीं मिलता। यह एक अभाव है जिसने परोक्ष रूप से कल्हण की राजतरंगिणी का महत्त्व बढ़ाया, जैसा कि हम देख चुके हैं। कश्मीर ही कोई विशेष अपवाद नहीं था; विद्या और साहित्य के प्राचीन केन्द्रों के समीपवर्ती क्षेत्र भी इसी तरह उपेक्षित या स्वल्प-निर्दिष्ट रहे। फिर भी पाणिनि ने अपने प्रसिद्ध व्याकरण में कश्मीर का उल्लेख किया है। महाभारत और पुराण कश्मीरियों का उल्लेख करते हैं। बराहमिहिर (५०० ई०) की बृहत्संहिता में भारत के उत्तरीय क्षेत्रों में कश्मीर का समावेश है।

भारत के सीमांतों से परे कहानी बदल जाती है। टॉलेमी ने अपने भूगोल में (२री सदी ई०) कस्पीरिया (कश्मीर) के प्रदेश को "बिदास्पिस (वितस्ता) के स्रोत के नीचे" रखा। हैकातयोस (५४६-४८६ ई० पू०) गांधारियों की नगरी कस्पपिरोस का उल्लेख करते हैं; क्योंकि प्राचीन काल में कश्मीर का गांधार (काबुल घाटी) से निकट सांस्कृतिक और राजनीतिक संबंध था। बाद में हिरो-डोटस (इतिहास के पिता) ने कस्पपिरोस का उल्लेख किया।

ये लौकिक संदर्भ पश्चिमी देशों में कश्मीर की कीर्ति सिद्ध करते है; दूसरी ओर घाटी के चीनी उल्लेख ज़्यादा विस्तृत हैं और ५४१ ई० तक प्राचीन हैं। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यूनसाँग, जो ६३१ ई० से दो वर्ष तक घाटी में रहे, के विवरण काफ़ी विस्तारयुक्त हैं। उन्होंने आदर्श यथार्थता-पूर्वक राजा के शासित-क्षेत्र, उसके सहिष्णु व्यवहार, जनता, जलवायु, भूमि आदि का वर्णन किया। घाटी के मूल के संबंध में प्रचलित परंपराओं के विषय में उन्होंने जो लिखा वह इतिहासकारों के लिए काफ़ी उपयोगी सिद्ध हुआ है। उन्होंने लिखा कि ६३३ ई०

में तोसमैदान के रास्ते से उन्होंने घाटी छोड़ दी और पुन्नुत्सो पहुँचे — जो कल्हण की राजतरंगिणी में पर्णोत्स, और आधुनिक पूँच, है।

शाही तंग वंश के वृत्तांत भी इतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जिनमें दरबार में राजा चेंतो-लो-पि-लि (लगभग ७१३ ई०) द्वारा प्रेषित कश्मीर से प्रथम राजदूत के आने का और बाद में उसके भाई व उत्तराधिकारी मु-तो-पि के दूसरे दूत का उल्लेख है। जैसीकि इतिहासकारों की सहमति है, ये नाम कल्हण की राजतरंगिणी के चंद्रापीड और मुक्तापीड (ललितादित्य) का स्पष्ट निर्देश करते हैं। झील मो-हो-तो-मो-लुंग (या वूलर झील का प्राचीन नाम महापद्म) और शहर पो-लो-उ-लो-पो-लो (या प्रवरपुर, जैसाकि श्रीनगर को कहते थे) के उल्लेख भी राजतरंगिणी और दूसरे कश्मीरी पुरालेखों से पुष्ट हैं।

दूसरा उल्लेखनीय चीनी यात्री ७५९ ई० में औकांग था जो ह्यूनसांग के समान ही उरूस (हजारा) द्वारा घाटी में प्रविष्ट हुआ और चार स्मरणीय वर्षों तक रहा। यद्यपि घाटी और उसके निवासियों के उसके वर्णन ह्यूनसाँग की घोर यथार्थता से रहित हैं; फिर भी उनकी ऐतिहासिक कीमती है क्योंकि अवंतिवर्मा (८५५-८८३ ई०) द्वारा मंदिर और विहार स्थापित किये जाने के कल्हण के अनेक विवरणों को वे पुष्ट करते हैं।

तंग वंश के लोप के उपरांत यह मेल समाप्त हो गया। स्पष्टतः भारत के पूर्वोत्तर राज्यों और चीन के बीच के राजनीतिक संबंध अचानक समाप्त हो गए। अगली दो शताब्दियों तक चीनी बौद्ध-यात्री कश्मीर आते तो रहे; किंतु अपनी दैनंदिनियों में घाटी और उसके निवासियों के विषय में उन्होंने कोई विवरण नहीं लिखा।

कालक्रमानुसार, कश्मीर के इतिहास और भूगोल पर लिखनेवाले आगामी विदेशी लेखक आरंभिक मुस्लिम यात्री हैं। उनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण महान् अरब विद्वान् अल्बेरुनी हैं जिनकी एकांत घाटी में उत्सुकता महमूद गज़नी की विजयों के कारण जागरित हुई; क्योंकि यह बतालाया गया कि 'हिंदू ऐसी जगह भाग गए हैं जो अभी हमारी पहुँच के बाहर हैं, जैसे कश्मीर, बनारस इत्यादि...'। अल्बेरुनी कश्मीर और बनारस का उल्लेख ज्ञान और विज्ञान के प्रसिद्ध केंद्र के रूप में करते हैं; यद्यपि महमूद गज़नी कश्मीर पर विजय प्राप्त नहीं कर सका, फिर भी अल्बेरुनी ने कश्मीर के निवासियों, तौर-तरीक़ों, कृषि, कला और शिल्प के विषय में, भारत के दूसरे हिस्सों की अपेक्षा, कहीं अधिक विस्तार से लिखा।

मुगलों के अधीन कश्मीर पर भी क़ाफ़ी लिखा गया। अबुल-फ़जल ने (आईने-अकबरी में), कल्हण की राजतरंगिणी को स्रोत बतलाते हुए, कश्मीर के आरंभिक इतिहास का सारांश दिया। फ़ादर जेरोम ज़ेवियर और फ्रांसिस बर्नियर प्रमुख कई यूरोपियनों ने भी, जो क्रमशः अकबर और औरंगज़ेब के साथ रहे, कश्मीर

और कश्मीरियों के विषय में लिखा।

१६६५ ई० में औरंगज़ेब के साथ आने वाले फ्रांसीसी चिकित्सक डॉ० बर्नियर की टिप्पणियाँ भी कश्मीरियों के सामाजिक और आर्थिक जीवन पर काफ़ी प्रकाश डालती हैं। घाटी की सुंदरताओं की परम प्रशंसा के दौरान (वर्णन का 'पैराडाइस ऑफ़ दि इंडीज' शीर्षक बिलकुल सही है) बर्नियर का संकेत मलिक हैदर के पुरालेख की ओर था जब उन्होंने लिखा, "जहाँगीर की आज्ञा से लिखित प्राचीन कश्मीरी राजाओं के इतिहास जिनका अब मैं फ़ारसी से अनुवाद कर रहा हूँ।" अभी तक अनुपलब्ध अनुवाद संभवतः खो गया है। एक टाइरोली मिशनरी ल पेरे टीफेनथैलर की कृति 'डिस्क्रिप्शन द ल' इंद' में कश्मीर के प्राचीन राजाओं के इतिहास के सारांश के लिए भी मध्य १८वीं सदी में पुनः मलिक हैदर का पुरालेख स्रोत बना। १७वीं सदी के उत्तरार्ध और १८वीं सदी में कुछ यूरोपियनों ने विशद विवरण लिख छोड़े। इनमें से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण १७८३ ई० में घाटी में प्रवेश करने वाले बंगाल आर्मी के एक अधिकारी जार्ज फार्स्टर द्वारा लिखित सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक अवस्था का विवरण। अफ़ग़ानों के अति कठोर शासन के समय कश्मीरियों द्वारा भोगी गई पीड़ाओं के विषय में उसने जो लिखा वह कल्हण द्वारा वर्णित तत्सदृश यातना-काल की याद दिलाता है। सिक्ख-काल (१८१९-४६ ई०) पर भी कई यूरोपीय यात्रियों ने लिखा; इनमें विग्ने का विवरण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, राजनीतिक और आर्थिक ढाँचे के पुनर्मूल्यांकन व साथ-ही-साथ जन-साधारण, आचार-विचार, लोक-कथा, शाल-व्यापार आदि के अध्ययन के कारण। मूर क्राफ़्ट ने लद्दाख के विषय में भी लिखा और अलेक्ज़ेंडर कनिंघम-कृत 'लदख' 'लघु तिब्बत' संबंधी सूचनाओं की खदान है।

"कश्मीर की घाटी", एक यात्री-लेखक सर वाल्टर लारेंस[1] लिखते हैं, "हिंदुओं की 'पवित्र स्थली' है और मैं शायद ही कोई ऐसे गाँव में पहुँचा होऊँगा जिसमें प्राचीनता का स्मारक न हो...।" शौक़िया लोगों और अन्यों के द्वारा की गई खुदाइयों द्वारा धीरे-धीरे महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हुईं। संस्कृत और फ़ारसी पांडुलिपियों का संग्रह करने में लगे हुए जार्ज बूहलर (१८७५ ई०) ने कल्हण की राजतरंगिणी और दूसरी कृतियों में उल्लिखित प्राचीन स्थलों के साक्ष्य पाए। ऐतिहासिक भूगोल का महत्त्व बतलाते हुए उन्होंने राजतरंगिणी के पूर्ण व समीक्षात्मक अध्ययन हेतु दिशा-निर्देशन दिये।

इस प्रकार के प्रोत्साहन से पुरातत्त्व-संबंधी गवेषणाओं ने कश्मीर के इतिहास पर प्रकाश डाला और अनेकों के द्वारा राजतरंगिणी के संबद्ध विवरण पुष्ट हुए। राज्य के भीतर और बाहर प्राप्त—सोने, चाँदी, ताँबे और पीतल के—सिक्कों के

१. दि वैली आफ़ कश्मीर।

अध्ययन ने इन गवेषणाओं की पूर्ति की। जार्ज कनिंघम के विशाल मुद्रासंग्रह का राजतरंगिणी की कालगणना पद्धति से सीधा संबंध था। प्राचीन मुद्राओं की उनकी खोज के महत्त्वपूर्ण परिणाम एक शोधपत्र[1] में प्रकाशित हुए जिसने कल्हण और दूसरे इतिहासकारों के पुरालेखों के समीक्षात्मक मूल्यांकन हेतु मुद्रा-साक्ष्य की क़ीमत सिद्ध कर दी।

कश्मीर-घाटी के चारों ओर के क्षेत्रों के नृवंश-विवरण को काफ़ी हद तक राजतरंगिणी में खोजा जा सकता है। प्रसिद्ध शारदा-तीर्थ के ऊपर स्थित किशन-गंगा घाटी के ऊपरी भागों में, आज के ही समान, दरद रहते थे—कल्हण ने कई बार उनका कश्मीरियों के उत्तरी पड़ोसी के रूप में उल्लेख किया है। कल्हण द्वारा उल्लिखित 'आगे उत्तर के म्लेच्छ' भी दरद ही रहे होंगे जो उनके समय मुसलमान बन गए होंगे। घाटी के समीपवर्ती दक्षिणी और पश्चिमी प्रदेशों में खस रहते थे। रजौरी और पुंछ के पहाड़ी राज्यों पर खस शासन करते थे; एक खस राजवंश ने ११वीं सदी में घाटी पर कब्जा कर लिया था। उत्तर में मुजफ़्फ़राबाद तक डोंब रहते थे। घाटी के पूर्वोत्तर और पूर्वी भागों में भौट्ट (आधुनिक लद्दाख और समीपवर्ती जिलों के भुटिया) रहते थे। राजतरंगिणी से संचित ये और दूसरे तथ्य तब उपयोगी सिद्ध होंगे जब कश्मीरियों और अन्य उत्तरक्षेत्रीय लोगों का पूर्ण नृवंश-शास्त्रीय सर्वेक्षण किया जाएगा।

१. न्यूमिस्मैटिक क्रानिकल, १८४६ ई०।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

अबुलफज़ल : **आईने-अकबरी**; अनु० एच० एस० जैरेट, एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल की बिब्लियोथिका इंडिका सिरीज़। साथ ही, अनु० सटिप्पण जे० एन० सरकार, एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, १९४९।

कौल, एस० : सं० **जैन-राजतरंगिणी**; होशियारपुर, १९६६।

कौल, मुहम्मद आज़म : **वाक्याते-कश्मीर**; श्रीनगर।

जादू, जगधर (व कंजीलाल) : सं० **नीलमतपुराण**; श्रीनगर, १९२८।

जोंस, सर विलियम : **एशियाटिक रिसर्चेज़**, खंड ५, कलकत्ता, १८२६।

दत्त, जे० सी० : **किंग्ज ऑफ़ कश्मीर ३**; जोनराज, श्रीवर और शुक की राजतरंगिणियों का अनुवाद; कलकत्ता, १८९८।

पंडित, आर० एस० : **राजतरंगिणी** कल्हण-कृत; अनुवाद, पुनर्मुद्रण, साहित्य अकादेमी, १९७७।

पर्मु, आर० के० : **हिस्ट्री ऑफ़ मुस्लिम रूल इन कश्मीर**; नई दिल्ली, १९६९।

पीटर्सन, पी० : **द्वितीय राजतरंगिणी** जोनराज-कृत; अनुवाद, बंबई, १८९६।

बमज़ई, पी० एन० के० : **ए हिस्ट्री ऑफ़ कश्मीर**; मेट्रोपोलिटन बुक कं० (प्रा०) लि०, दिल्ली, १९६२।

बूहलर, जी० : **विक्रमांकदेवचरित**; अनुवाद, बंबई, १८७५।

मजूमदार, आर० सी० : **एंशेंट इंडिया**; बनारस, १९५६।

,, : **दि वैदिक एज**; लंदन, १९५०।

रॉलिसन, एच० जी० : **इंडिया**; लंदन, १९३७।

राय, एस० सी० : **अर्ली हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ़ कश्मीर**, नई दिल्ली, १९६९।

लारेंस, वाल्टर : **दि व्हैली ऑफ़ कश्मीर**, लंदन, १८९५।

सूफ़ी, जी० एम० डी० : **कशिर**; पुनर्मुद्रण, लाइट एंड लाइफ़ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, १९७४।

सक्सेना, के० एस० : **पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ़ कश्मीर;** दि अपर इंडिया पब्लिशिंग हाउस (प्रा०) लि०, लखनऊ, १९७४।

स्टीन, एम० ए० : **कल्हण-कृत राजतरंगिणी;** अनुवाद, पुनर्मुद्रण, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, वाराणसी; १९६१।

" " : **नोट्स ऑन अऊ-कांग्ज अकाउंट्स ऑफ़ कश्मीर;** वियेन, १८९६।

विल्सन, एच० एच० : **एन् ऐसे ऑन् दि हिंदू हिस्ट्री ऑफ़ कश्मीर;** ट्रांज़ेक्शन् ऑफ़ दि एशियाटिक सोसायटी; एशियाटिक रिसर्च; खंड १५; कलकत्ता, १८२५।

● ●





कल्हण, राजतरंगिणी के प्रसिद्ध लेखक, एक पुरालेखक मात्र नहीं हैं; बल्कि एक कवि भी हैं जो प्रेम करते थे अपनी कश्मीरी मातृभूमि के ग्राम्य-स्वर्ग से, उसके नदी-निर्झरों से, फूलों से ढँके चरोखरों से, लहलहाते खेतों के ऊपर फैले हुए गुदगुदे बादलों से, चितकबरे आसमान से, तरुपंक्ति से सुदूर दृश्यमान पहाड़ों पर की बर्फ़ से जहाँ उषा और संध्या के समय कलाकार के वर्णपट के सारे गुलाब और मँजीठ भर जाते हैं। कल्हण की आवाज़; जो विगत शताब्दियों के ऊपर से साफ़-साफ़ गूँजती है; कई प्रकार से प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति प्रेम की दृष्टि से, स्त्री-पुरुषों के हृदय के और उनके द्वारा स्वार्थ-साधना हेतु प्रयुक्त साधनों के समीक्षात्मक परीक्षण की दृष्टि से एकाकी रूप में आधुनिक है।

अतीत के अनेक प्रमुख संस्कृत कवियों के समान, कल्हण के जीवन के विषय में कोई ज्यादा जानकारी नहीं है। इस पुस्तिका में सोमनाथ धर ने कवि-रचित ग्रंथ के आंतरिक साक्ष्य की सहायता से जीवनी-संबंधी विवरण बटोरने का और राजतरंगिणी के अधिक अच्छे मूल्यांकन हेतु पाठक की मदद करने का प्रयास किया है।

पन्द्रह रुपये

अत:चित्र ए० देवसी द्वारा एक आलेखन है जो मार्तण्ड मन्दिर कश्मीर, में त्रिदल ताख में भैरव के रूप में बैठे हुए शिव के आरंभिक ९वीं सदी के मूर्तिशिल्प पर आधारित है; 'आर्कियालाजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया' के सौजन्य से प्राप्त एक छायाचित्र के अनुसार।